इतने अच्छे दिन

मूल्य : तीस रुपये (30.00)

प्रथम संस्करण : 1989 © कमलेश्वर
राजपाल एण्ड सन्ज़, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6 द्वारा प्रकाशित
ITNE ACHHE DIN (Short Stories) by Kamleshwar

ISBN 81—7028—061—3

इतने अच्छे दिन

कमलेश्वर



राजपाल एण्ड सन्ज़

भूमिका

सफ़र लम्बा था और उस लम्बे सफ़र के बाद मैंने यह कहानियां लिखी। लिखकर रखता गया। 'सारिका' छोड़ने के बाद एक लम्बा शून्य है''' एक बेहूदे संघर्ष में मैं फंसा रहा—दोग़ली अर्थव्यवस्था में सांस लेने का सबक सीखता रहा और अपनी सामर्थ्य भर उत्तर देता रहा।'''बम्बई जैसे शहर में रहने और शिद्दत से कार्य करते रहने के लिए—क्योंकि टाइम्स छोड़ने के बाद तत्काल कोई विकल्प मेरे सामने नहीं था—मुझे फिल्मों की तरफ पूरी रचनात्मकता और क्षमता के साथ जाना पड़ा'''जो कुछ फिल्में पहले लिखी थी, उनकी सफलता ने साथ दिया और फिल्मी दुनिया में आश्वस्त होकर काम करने का एक नया दौर शुरू हुआ।

फिल्मों की आमदनी से मैंने 'कथायात्रा' निकाली—उसका स्वागत और प्रसार तो बहुत संतोषजनक हुआ परंतु 'कथायात्रा' ने भारी आर्थिक नुकसान पहुंचाया'''और जिन लेखक-पाठक मित्रों ने उसमें आंशिक आर्थिक सहायता या अनुदान दिया था—उनका पूरा पैसा भी मैं नहीं लौटा पाया'''कथायात्रा कार्यालय में मुझे कोई रिकार्ड नहीं मिला।'' जो कुछ मेरी नोटबुक में नोट था, उसके आधार पर मैंने धीरे-धीरे फिल्मी आमदनी से सत्तर-अस्सी मित्रों का पैसा चुकाया, बाकी का नहीं चुका पाया, यह भी एक तकलीफदेह अध्याय है।

तभी सन् 80 में दूरदर्शन ज्वाइन करने का प्रस्ताव आया और अधिकांश निरर्थक फिल्मी लेखन से मुक्ति पाने के लिए मैंने सरकारी नौकरी स्वीकार कर ली—दूरदर्शन में आने का प्रस्ताव जनवरी 80 के अन्त में आया था, पर मैं तत्काल इक्कीस फिल्मों को छोड़कर नहीं आ सकता था, अतः ग्यारह फिल्में मैंने छोड़ीं, निर्माताओं की अग्रिम धनराशि लौटाई—शेष दस फिल्मों में से पांच अपने निर्माण की अलग-अलग स्टेज पर थीं, उनकी स्क्रिप्टें लिखी जा चुकी थीं—बाकी पांच फिल्में मैंने अगस्त 80 तक पूरी कीं और सितम्बर 80 में मैं दूरदर्शन की नौकरी में चला

आया। मन में कुछ आदर्श थे, सामने कुछ सिद्धांत भी थे, अधिक कारगर तरीके से जीने और काम करने के अवसर थे···और मैं दूरदर्शन में यही तय करके गया था कि मैं भारतीय दूरदर्शन को सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम बनाऊंगा और इसका प्रगाढ़ सम्बन्ध समस्त भारतीय साहित्य, रंगमंच और लोक संस्कृति से जोड़ूंगा ताकि दूरदर्शन फिल्मी और व्यावसायिक प्रयोजनों से अपनी रक्षा कर सके। संतोष की बात यह थी कि उस अवधारणा को मूर्तरूप देने में मुझे मेरे तत्कालीन सूचना-प्रसारण मंत्री श्री वसंत साठे और प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की सम्पूर्ण सहमति मिली—और काम करने की मौलिक वैचारिक आजादी भी!

फिर निहित स्वार्थों और सत्ता के आस-पास मंडराते तत्त्वों से सामना हुआ···यह भी एक रोचक पर लम्बी कहानी है।

बहरहाल—

इस नये संकलन में 'इतने अच्छे दिन····' कहानी सन् '76-'77 की है, 'अच्छा थीक है····' सन् '86 की, 'जामातलाशी' सन् '87 की और शेष सारी कहानियां सन् '89 मार्च से लेकर अब तक की लिखी हुई हैं।

एक बात हमेशा मेरे लिए स्पष्ट रही है कि मुझे रचना के भीतर और रचना के बाहर—दोनों स्थितियों में जीना पड़ता है···दोनों ही सघन स्थितियां हैं—एक रचनात्मक स्तर पर और दूसरी वैचारिक स्तर पर।

लेकिन अंतिम रचनात्मक और अंतरिम वैचारिक उत्तर तो कहानियां ही दे सकती हैं···इसके अलावा और क्या कहूं?

अपने समकालीनों और युवा कहानीकारों को धन्यवाद सहित—क्योंकि शून्य के दिनों में उनकी कहानियों ने ही मुझे शक्ति दी है···जिन्हें मैं लगातार पढ़ता रहा हूं।

डब्ल्यू-26, ग्रीनपार्क, — कमलेश्वर
नई दिल्ली — 26.7.89

क्रम

इतने अच्छे दिन…

सचमुच इतने अच्छे दिन तो कभी नहीं आये थे।

पास में अगर हड्डी-गोदाम न होता, तो बहुत मुश्किल होती। सभी कुछ तो अच्छा था। तीन-चार गांव पास लगे हुए। सबके बीच में सूखे चरागाह। इतने सारे रिश्तेदारों के घर। तीन कोस पर बहती नदी। ऊंचे-नीचे टीलों वाला बियाबान। पास से जाती बस्ती की सड़क। खास सड़क पर रात में ट्रकों के रुकने का अड्डा। उस अड्डे से मील भर बायें हड्डी-गोदाम। उससे भी तीन मील भीतर रेलगाड़ी का स्टेशन।

चारों गांवों में अगर इतने रिश्तेदार, ढोर-डंगर और जानवर न होते तो भी काम नहीं चलता। और बीस मील दूर शहर में चीनी मिलें न होतीं तो भी दिक्कत होती। सड़क ऊंचे-नीचे टीले वाले बियाबान से न गुज़रती, तब भी ठीक नहीं था।

घर में छोटी बहन कमली न होती, तो कैसे काम चलता! उस बियाबान से ट्रक न गुज़रते होते, तो भी दिक्कत होती। और बंतासिंह ट्रक-ड्राइवर अगर रात में कमली को उठा न ले जाता तो उसकी ज़िन्दगी ही बरबाद हो जाती।

सब कुछ अच्छा ही हुआ था।

सबसे अच्छी बात तो यह हुई कि इलाके में लगातार तीसरे साल भी अकाल पड़ गया। अकाल न पड़े तो घर-गांव का आदमी बाहर निकलता ही नहीं। जिनके अपने खेत हैं, वे तो बाहर हो आते हैं। जिनके खेत नहीं हैं उनका तो कहीं कुछ भी नहीं है। खेतवालों के खेत पर मजूरी करना और वहीं गांव में पड़े-पड़े मर जाना। कहां कुछ और होता है!

कमली के लिए तो और भी अच्छा हुआ। वह कब कहां निकल पाती? बाला के लिए तो फिर भी ऐसा है कि एकाध गांव घूम आये, नदी तक हो आये। दर्जा पांच तक पढ़ने चला जाये।

नदी तक बिना कहे-सुने बाला हो आये तो ठीक था। कह दिया तो मुश्किल होती थी। दादी उसे हुटकने लगती थी—नदी पर मत जाया कर। जाये भी तो नहाना कभी मत। दादी बोलती थी तो पैर की उंगली में पड़े कांसे के छल्ले को घुमाती रहती थी। शायद वह उसके गड़ता था। दादा भी यही बोलता था।

वे दोनों मानते ही नहीं थे कि वह नदी तक जायेगा और नहायेगा नहीं। और बाला को नदी में उतरते हमेशा डर लगता था। ऊपर से दादी झूठ बोलती थी—कहा न, पानी का रंग नहीं होता।

बाला हमेशा कहता था—दादी, मेरी बात सुन। मैं देख के आया हूं। पानी का रंग लाल है—खून की तरह लाल!

दादा ठठाकर हंस पड़ते थे—कैसी बातें करता है रे···पानी का कोई रंग नहीं होता। तू नदी पर मत जाया कर। जाये भी तो नहाना कभी मत।

दादा-दादी की ये बातें असल में अब बाला को याद आती हैं। हंसी भी आती है। उनके पास और बातें ही नहीं थीं। अपन के पास तो बहुत कुछ है। बहुत कुछ क्या, सभी कुछ है।

सर्दी माली कुछ ज्यादा ही थी। जिधर से कथरी उठ जाती, उधर से हवा अर्जुन के तीर की तरह लगती। कमली खिलखिला रही थी। उसे लगा—चलो, सब ठीक है। कमली खुद तो नहीं पीती, पर ड्राइवरों की शीशी में से दो-चार घूंट बचा के रख देती है उसके लिए—और क्या चाहिए?

साला क्लीनर ज्यादा ही खुदर-बुदर मचाये हुए था। न सोता था, न सोने देता था। बार-बार बीड़ी सुलगाता है। खांसता है। कथरी खींचता है। अबे, इतना जाड़ा लग रहा है तो मोबी आइल डाल के अलाव जला ले! नींद तोड़ दी साले ने! कैसी मजे की नींद आती है यहां इस सराय·

में ! कमली यहां है तो सब ट्रक वाले बस्तियां पार करते सीधे यहीं आते हैं।

ट्रक-सराय के मालिक ने भी पूरा इन्तजाम कर रखा है। बडा-सा हाता घेरकर ट्रकों की सराय बना ली है। बाहर भी दस-बारह ट्रकों की जगह है। दिन में खाने की मेजें और बेंचें पड़ जाती हैं, रात को खटियां और खटियों पर पटियां। थके-मांदे ड्राइवर और क्लीनर दिन में भी आराम कर लेते हैं। पूरी रात गुजारने के लिए तो पूरा इन्तजाम है ही।

हर तरह का खाना। मुर्गा-शुर्गा खाना हो तो सामने दड़बे में से पसंद करो। अपने सामने बनवाओ, पकवाओ और खाओ। बीड़ी-सिगरेट की कमी नहीं। ग्रामोफोन भी बजता ही है।

दांत खोदते-खोदते तसवीरें देखना चाहो तो पचासों लगी हैं। भगवान की तसवीरें अच्छी लगें तो उन्हें देखो। गुरुवाणी सुननी हो तो रिकार्ड सुनो। औरतों की तसवीर देखनी हों तो वे भी लगी हैं। लुंगी-कच्छा धोना हो तो पटिया बिछी है, ट्यूबवैल लगा है। सुखाने के लिए तार बंधा है। दिशा-मैदान के लिए सूखे खेत पड़े हैं।

—अबे, तू क्यों उठ के बैठ गया ? सबेरा होने में बहुत देर है। जाड़ा लगता है ? अपन को बता ! हे ऽऽऽ साला बीड़ी सुलगा के खींचे जा रहा है। बीड़ी के जलते फूल में आंखें कैसी चमकती हैं कुत्तों की तरह—लखन क्लीनर की।

कुत्ता भी साला बड़ा भला जानवर है।

अकाल पड़ा तो भी नहीं भागे। वहीं गांव के बियाबान में लाशों को चीथते-चीथते मर गये। गिद्ध साला बहुत तेज होता है। चार-पांच कुत्ते न लगें तो एक गिद्ध को लाश पर से हटाना मुश्किल होता है।

—तू यहां आया कैसे ? लखन ने पूछा।

—तू बीड़ी पी ले, अच्छी तरह खांस ले। बताता हूं। बाला बोला था।

—हां, बता !

—तो सुन ! तुझे नींद क्यों नहीं आ रही ? अच्छा-अच्छा, सुन ! ये कमली मेरी बहन है न···एक शाम···

—सच्ची ? और लखन कमली की बात पर ही अटक गया।

—अवे और क्या ?

—कमली लड़की अच्छी है। समझदार है। ड्राइवर कहीं और रुकता है तो भी उसी की बात करता है। एक रात ट्रक बिगड़ा तो पैदल लौटने को हुआ। तब हमी ने ड्राइवर को समझाया—अब दस किलोमीटर है। कोई उधर जाता ट्रक ले लो, सवेरे लौट आना। मैं तो हूं। फिर लदे हुए सामान की ज़िम्मेदारी भी थी। सो वह नहीं गया।

—अच्छा ! तो सुन—ये साला बोरा बहुत महक रहा है। पहले इसे हटा दें।

—क्या है इसमें ? लखन क्लीनर ने पूछा था।

—है ? साली हड्डियां हैं !

लखन क्लीनर समझा नहीं। बीड़ी पीकर खांसने लगा। सर्दी में उठने की हिम्मत नहीं पड़ी तो बोरे से आती बदबू को उसने सह लिया। क्लीनर बीड़ी पीता है तो बदबू दब जाती है। बीड़ी फेंककर क्लीनर ऊंघने लगा। अपन को क्या ज़रूरत पड़ी है किस्सा सुनाने की ? सोओ साले…!

सुबह उठते ही बबूल की टहनी तोड़कर बाला ने दातून की। लखन अब आराम से सो रहा था। उसे जल्दी नहीं थी। तभी एक ड्राइवर रज़ाई में भालू की तरह हिला। उसने उठकर तहमद बांधा और दोनों बांहें छाती से चिपकाये दिशा-मैदान के लिए चला गया।

लखन का ड्राइवर बंतासिंह पहले ही उठ गया था। वह मैदान से लौट रहा था। छप्पर में पड़ी कमली गठरी बनी सो रही थी। उसकी खाट के पाये पर बंतासिंह की पगड़ी अजगर की तरह लिपटी रखी थी।

जल्दी उसे भी थी। उसने बोरा उठाया और सिर पर लादकर हड्डी-गोदाम की ओर चल दिया। साला बोरा बहुत महकता है। पर दाम तो अच्छे देता है—कमली भी चार-पांच रुपये बना लेती है। एक-सवा रुपया बोरे-भर हड्डियों का मिल जाता है। छ: रुपये रोज़ाना कौन कमाता है साला !

यह तो अच्छा हुआ कि चीनी मिलें खुल गयीं और यह हड्डी-गोदाम

भी ! चीनी चमकाने के लिए शोरे की जरूरत पड़ती है। पता नहीं, इन सूखी हड्डियों में से शोरा कहां से निकलता है ? निकलता होगा···

गोदाम के तक पर बोरा फंसाकर उसने मोटी-सी गाली देकर चंदू को पुकारा···तौल कर ··ये साली सर्दी···

चंदू कहीं दिखाई नहीं पड़ा। फिर गोदाम में भरी टनों हड्डियों के बीच से आता वह दिखाई पड़ा जैसे पिंजर उठकर चला आ रहा हो। आते ही उसने खीसें निपोर दी।

—आज सबेरे-सबेरे आ गया, बाला ?

—शाम देर हो गयी थी।

—कमली ठीक है ?

वह उसका मतलब समझ गया। चंदू के दिल में एक फांस है। नहीं तो पूछने की क्या जरूरत थी ? तक के दूसरे पल्ले पर बाट पटकते हुए चंदू ने फिर कहा—ये दिन पहले आ जाते तो काहे हम तीन से दो रह जाते !

चंदू का कहना तो ठीक था। पर तब यह सब व्यापार शुरू कहां हुआ था ? इसीलिए तो उसने समझा दिया था—देख चंदू, तू कमली की लगन मन से निकाल दे···खाने को दो के लिए नहीं है तो तीन के लिए कहां से आयेगा ?

अगर ये अकाल पहले ही पड़ गया होता और हड्डियों का धंधा शुरू हो गया होता तो कौन-सी दिक्कत थी !

वह यही सब सोच रहा था कि चंदू ने तौल करके बोरा नीचे पटक दिया। चंदू के मन में बाला के लिए ख्याल था। धीरे से बोला—इंगरेजी जमाने की एक कबरगाह तीन मील उत्तर में है। कबरों के पत्थर तो सब खोद ले गये, हड्डियां दबी पड़ी हैं, उन्हें खोद ला !

—उनमें से शोरा निकलेगा ? बाला ने पूछा था।

—सब चीज़ में मिलावट होती है, हड्डियों में भी मिला देंगे ! आंख दबाकर चंदू ने कहा था।

साला ! बाला के मुंह से मन-ही-मन गाली निकली थी। देना चाहे तो एक के पांच रुपये भी दे सकता है। वह नहीं करेगा, पर यह सब बताकर अपनापन जतायेगा। पैसे लेकर वह चला आया था।

लेकिन चंदू ने कब्रगाह की ठीक और सही खबर दी थी। हड्डियां ताजी तो नहीं थी, पर जैसे कोयले की खान हाथ आ गयी थी! जहां खोदो वहीं हड्डियां निकलती थी! उसे लगा था, ऐसी दो-चार खानें और हाथ आ जायें तो जिंदगी ही बदल जाये। आदमी अच्छा है चंदू!

पर पुरानी हड्डियों से ज्यादा चला नहीं।

असल में जब तीसरे साल भी अकाल पड़ा, तब बाला को होश आया था। अपने रिश्तेदारों की हड्डियां कितनी कीमती हैं! अपने रिश्तेदारों के ढोर-डंगरों की हड्डियां कितनी कीमती हैं! हड्डियों के लिए तब महाभारत मचा था। लोग पहरा लगाने लगे थे—ये हमारे रिश्तेदारों की हड्डियां हैं···ये उनके ढोर-डंगरो की हड्डियां हैं। इन पर हमारा हक है!

तब बाला ने जमकर लड़ाई लड़ी थी। गांव-गांव में और आस-पास रहते रिश्तेदारों की हड्डियों के लिए वह लड़ता था। ढोर-डंगरो के पिंजरों के लिए उसने लड़ाई की थी···

तभी दादा और दादी मरे थे। आठ दिनों की दूरी पर। और सत्ताइसवें दिन बापू मरा था। अम्मा तो आठ साल पहले ही मर गयी थी। बापू ने बहुत कहा था, पर बाला नहीं माना था कि दादा की लाश को जलाया जाये।

—जलाने से क्या मिलेगा? बाला बापू पर चीखा था।

और बापू चीखा था—अरे कमीने! तू हड्डियां भी बेच खायेगा? ऐसी औलाद से तो निपूता ही मरता!

बापू ने जो कुछ कहा हो, पर ये दिन कैसे आते अगर बापू की बात मान लेता! खाने को क्या था? जीने को क्या था? सब तरफ तो धरती झुलसी पड़ी थी।

तभी तो उसने तय किया था कि झुलसी-तपती धरती के नीचे अगर लाश दबा दी जायेगी तो हड्डियां जल्दी साफ हो जायेंगी। गिद्ध और कुत्ते साफ करने में देर लगायेंगे। इधर-उधर खींच के भी ले जायेंगे। पर रात में कोई हड्डिया खोद न ले जाये, इसी के लिए तो उसने कमली को पहरे

पर लगाया था, और वही से, सड़क किनारे से बंतासिंह उसे उठा ले गया था।

यह भी अच्छा ही हुआ था। अच्छे दिन आते हैं तो एक साथ आते हैं। जब बाला को पता चला था कि कमली ट्रकों की सराय में है तो वह गया था। बापू उस वक्त जिंदा तो था, पर इतना जिंदा नहीं कि सराय तक आ पाता। वह भूख से धीरे-धीरे मर रहा था। पर फिर भी जीने का कोई और रास्ता खोजने के लिए तैयार नहीं था। असल में यह बहुत भीतरी इलाका था जहां तक सरकारी मदद भी नहीं पहुंच पाई थी। जैसे खेत में सरकारी पानी जाता है न, जिस तक पहुंचा, पहुंच गया। उसके बाद···

होना वही था। बापू को भी मरना था।

पहले दादा मरा, उसके बाद दादी, उसके बाद बापू! रिश्तेदार और उनके ढोर-डंगर मर ही रहे थे।

पर तब तक बापू नहीं मरा था। शायद उसके मरने से एक दिन पहले की बात है। बाला जानवरों की हड्डियां बटोर रहा था। गिद्धों और कुत्तों के बीच। साले घसीट-घसीटकर बहुत दूर ले जाते हैं।

तब कमली उसे खोजती आयी थी। वह बाला को गिद्धों और कुत्तों के जमघट के बीच खोज ही नहीं पाई थी। उनके बीच वह घुटने मोड़े गिद्ध की तरह ही बैठा था। साफ हो गई हड्डियों को बीनता हुआ।

जब दादी की लाश तपती ज़मीन के नीचे दबाने गया था तो कमली ने कहा भी था—दादी के पैर की उंगली में पड़ा चांदी का छल्ला निकाल ले।

—चांदी नहीं, कांसा है! उसने परखकर जवाब दे दिया था। कमली इतना जानती भी नहीं थी। कांसा ही होगा।

भला हो चीनी मिलों और बंतासिंह का। ये दोनों न होते तो ये दिन कैसे आते? हड्डियों की खदानें वह क्यों खोदता? कमली ट्रकों की सराय में इतने आराम से क्यों रहती?

वह साला चंदू तो पागल है जो अब भी कहीं कमली की लगन लगाये बैठा है। जो कुछ कमली औरों से पाती है, वह चंदू से तो मिलने से रहा! होगा वही, जो अब होता है, पर ऊपर से चंदू को खिलाना और पड़ेगा।

यही सब सोचता-सोचता वह हड्डियों की खदानों की ओर चला गया था। सात-आठ दिन तो इतना काम रहा कि फुर्सत ही नहीं मिली। बोरा भर-भरकर पहुंचाता रहा। चंदू तौलता रहा और कमली की बात करता रहा, पर साले ने न तौल में साथ दिया, न पैसे में। है साला कमीना!

हड्डियों की खदानों से वह आठ दिन बाद लौटा था, रात को। कमली काम से थी। वह कथरी ओढ़कर लेट गया था। सिरहाने रखा हड्डियों का बोरा बहुत बुरी तरह महक रहा था। कमली कुलबुला रही थी। उसने पास जाकर पूछा था—कौन है?

—बस्ती का लाला है! कमली ने कहा था।

—इस साले से दस लेना! कहते हुए बाला अपनी खाट पर आ गया था। कुछ ही देर बाद सब कुछ शांत हो गया था। यह अच्छा था। बस्ती का लाला जब भी आता था तो शुरू में शोर ज्यादा मचाता था पर आधा घंटे बाद ही सो जाता था। ड्राइवर तो रात भर हंगामा करते थे। कमली भी बुरी तरह थक जाती थी और दूसरे दिन सोती रहती थी।

कमली तो सो गयी, पर उसे नींद नहीं आ रही थी। उस बोरे के कारण। मन बहुत उचटा हुआ था। रह-रहकर दादी की याद आ रही थी।

आज सर्दी भी बहुत थी और वह गांव के पास वाले ऊंचे-नीचे बियाबान टीले से दादी की हड्डियां खोदकर लाया था।

कमली ने तो रात काट ली थी, पर वह अपनी रात नहीं काट पा रहा था···सड़क से ट्रक आ-जा रहे थे। कुछेक सराय पर रुक भी रहे थे।

कड़कड़ाती सर्दी और अर्जुन के तीर की तरह चलती हवा। नीम भी बड़बड़ा रहा था। अंधेरा इतना गहरा कि उठने की हिम्मत ही नहीं पड़ रही थी! मन तो हुआ कि कमली को जाके जगाए और कहे—कमली! दादी की हड्डियां इसी बोरे में हैं। बहुत महक रही हैं। इस महक के कारण सो नहीं पा रहा हूं।

पर कमली थककर सोयी थी। बस्ती वाला लाला भी पड़ा था।

उसने आंखें बंद कर सोने की कोशिश की। एक पल के लिए नींद आयी थी कि तभी कोई ड्राइवर चीखा था—अबे ओए, दीना चल।

दीना सोता-ऊंघता जाकर ठंडी गद्दी पर अधलेटा हो गया था और वह ट्रक गुर्राकर चालू हुआ था। फिर हाथी की तरह झूमता सड़क पर जाकर कोहरे में खो गया था।

कथरी ओढ़कर वह खाट पर बैठ गया था और सड़क पर भरे कोहरे को देखता रहा था। चारों तरफ सन्नाटा था। मुर्गे तक दरबे में चुप थे। कासनी फूलों की बेल पेट्रोल पम्प की गुमटी के सहारे कांप रही थी। सनसनाती हवा। मुंह से निकलती भाप। ठिठुरे हुए पेड़। सामने फैले मैदान में रोंगटों की तरह खड़ी हुई घास।

बाला ने फिर लेटने की कोशिश की। लेट भी गया, पर नींद नहीं आयी। दादी! नाराज मत होना···ये दिन तू भी देख लेती तो शायद कुछ आराम से मरती। अब कमली भी बच गयी है और अपन भी। व्यापार भी चल निकला है। यह अकाल न पड़ता और इतने ढोर-डंगर, नाते-रिश्तेदार न मरते तो अपन का भी वही हाल होता। भला हो हड्डी-गोदाम का! चंदू वहीं लग गया है। कमली भी समझदार हो गयी है, दादी। अपन से उसने बात की थी। कहने लगी—चंदू से कह दे क्या फायदा? घर बसाऊंगी तो लौट के वहीं गांव के बाहर झोपड़ी डालनी होगी। कुआं सूखेगा तो फिर इधर ही भागना पड़ेगा। तब एक-एक लोटे पानी के लिए ब्राह्मण-ठाकुर छोड़ देंगे क्या? अकाल तो हम लोगों के लिए पड़ता है, बाकी सबके पास तो बरसों के लिए दाना है, पानी है···यहां कोई यह तो नहीं पूछता—कौन जात है? अपनी जरूरत से लोग आते हैं, कल नहीं आयेंगे तो इसी सराय के बर्तन-भांडे मांज-धोकर चलता रहेगा। ऐसे दिन बार-बार हाथ नहीं आते···चंदू से कह दे क्या फायदा···?

कमली बहुत समझदार हो गयी है, दादी! तू सुन रही है न! अर्जुन का तीर फिर लगा तो उसने कसकर कथरी लपेटी। पता नहीं, कब उठके फिर बैठ गया था। कोहरे की गुफा से एक ट्रक निकलकर फिर कोहरे की गुफा में घुस गया। कुछ देर तक आवाज बजती रही।

बाला उठा। कमली को जगा ले। पर···

तभी उसके लिहाफ में हलचल और कुनमुनाहट हुई। लाला लिहाफ से निकल सुड़सुड़ाता हुआ खड़ा हो गया। कमली बोली—लेटा रह, बहुत जाड़ा है!

लेकिन लाला को तो अंधेरे-अंधेरे निकल जाना होता है। रात कहीं भी निकले पर उसका दिन बस्ती में ही निकलता है। टोपा चढ़ाकर, चादर लपेटकर लाला पगडंडी पकड़कर बस्ती की ओर चला गया।

बाला वैसा ही बैठा रहा। बोरे की तरफ देखता हुआ। कमली की भरक टूट गयी थी। शायद उसने लिहाफ के भीतर से देखा होगा। वह पास आकर खड़ी हो गयी थी—अरे बाला! तू अभी तक जाग रहा है?

—नींद नहीं आ रही!

—थोड़ी-सी उधर पड़ी है अद्धे में। पी ले। भरक मिल जायेगी··· सो जा···सो जा···कहते हुए कमली अपनी खाट की तरफ जाने लगी थी।

—सुन! बाला ने कहा था।

—बोल!

—दादी सोने नहीं दे रही है!

—दादी! कमली ने ताज्जुब से कहा था।

—हां···उसकी काया इसमें बैठी है···बोरे में! बाला ने कहा था।

—अरे, हट! कमली ने झिड़क दिया था।

—कमली! वो अच्छा हुआ कि कोई और खोदकर नहीं ले गया। अपन ही पहुंचे खदान पर···पूरा पिंजर निकाला!

—ऐसे कह रहा है जैसे पहचान लिया हो! कहते हुए कमली उसी की खाट पर आधी कथरी ओढ़कर बैठ गयी।

—दादी के पैर की अंगुली में वो कांसे का छल्ला अब भी पड़ा है··· बाला ने कहा तो कमली आगे नहीं बोली। बोरे की तरफ देखती रही।

पेट्रोल के दोनों पम्प सफेद रजाई ओढ़े कानों में उंगली डाले खड़े थे। छप्पर के बांसों में लटके टायर पुतली निकली आंख के कोटर की तरह देख रहे थे। सड़क किनारे खड़े नीम के पेड़ों की गर्दनें कोहरे की तलवार ने

काट दी थी। ट्यूबवेल के ठंडे पाइप की बांह कच्ची गुमटी की कमर में लिपटी हुई थी। और वे दोनों वहीं खाट पर चुपचाप बैठे थे। जाड़ा बरस रहा था। अब दोनों को नींद थी। वक्त का कुछ अन्दाजा नहीं था।

घुटनों पर बांहें मोड़े, ठोड़ी टिकाये कमली बैठी थी। पाटी का सहारा लिये बाला अधलेटा था। तभी सामने, दूर कोहरे के टुकड़ों के पीछे काले आकाश में कुछ हलचल-सी हुई थी। काले बादल की लोहे की किनारी थोड़ी-सी चमकी थी···जैसे उसके पीछे आग की भट्ठी की एक दहकती लपट उठी हो। पर फिर लोहा ठंडा पड़ गया था। एक पल बाद काले लोहे की कई किनारियों पर लपट के आसार दिखाई दिए थे···फिर वे बुझ गये थे। पर भट्ठी शायद बराबर धधक रही थी। गड़िया लुहारों का कोई पड़ाव आसमान के पीछे है क्या? धौंकनी चल रही थी और आग बढ़ रही थी। धीरे-धीरे लोहे की किनारियां पीली पड़ गयी थीं···जगह-जगह बादलों के होंठ नीले हो गये थे। कोहरे के चकत्ते आग ने सोख लिए थे। आसमान में जगह-जगह चौरा लग गया था। तब घास के खड़े रोंगटे सुरमई से सुनहरे हुए थे और गर्दन कटे पेड़ों के सिर नज़र आने लगे थे।

बाला कसमसाकर सीधा बैठ गया था।

कमली ने पूछा था—ये हड्डियां गोदाम ले जायेगा?

—हां! बाला बोला था।

—सुन, बाला! ···इन्हें नदी मे सिरा दे!

बाला अचकचाकर रह गया। यही कुछ तो, कुछ इसी तरह की बात तो वह भी सोच रहा था, पर यह नहीं सोच पाया था कि दादी की काया को नदी में सिरा आये।

—ठीक है न! कमली ने कहा—बुरे दिन होते तो दूसरी बात थी। गोदाम में ही दे आता···

—हां! वह बोला—तड़के-तड़के निकल जाता हूं···नदी दूर है। दिन चढ़े तक लौट आऊंगा।

और वह बोरा उठाकर सड़क पार करके मैदान में उतर गया था, उस पगडंडी पर जो नदी की ओर जाती थी। कमली उसे तब तक देखती रही

थी, जब तक वह पेड़ों के झुरमुट के पीछे अलोप नहीं हो गया था।

कमली जाकर अपनी रजाई में गठरी बनकर लेट गयी थी। आदमी साथ होता है तो टांगें पसारकर सोने में भी उतनी सर्दी नहीं लगती। भरक मिलती रहती है। पर नींद बुरी तरह घिर रही थी। लेटते ही उसे नींद आ गयी। बहुत गहरी नींद।

यह पता ही नहीं चला कि बादलों के बीच से निकलकर सूरज कब ठण्डा पड़ गया और दिन पूरी तरह कब निकल आया। शोर कब होने लगा। चारों तरफ जिंदगी अपनी रफ्तार पर आ गयी थी। दरबे में मुर्गे कुड़कुड़ाने लगे थे। कुत्ते पेट्रोल पम्प और सड़क तक दौड़ रहे थे। ट्रक-सराय की लंबी मेजें धुल गयी थीं। सब्जियां कट रही थीं। अंगीठियां जल गयी थीं। रात को रुके हुए ट्रक वाले चाय पी-पीकर सफर पर निकल गये थे। ट्यूबवेल धक-धक कर रहा था। वल्कनाइजर के छप्पर में मशीन पर रबर का टांका लगानेवाले लड़के आ गये थे। सराय के मालिक ने जपुजी का रिकार्ड लगा दिया था। अगरबत्तियों की महक फैली हुई थी।

कमली नींद की मारी थी।

बाला लौटा, तब भी वह सो रही थी। आते ही उसने जगाया। आंखें मलते-मलते कमली ने पूछा—सिरा आया?

—हां! उसके दांत अब भी कटकटा रहे थे। अर्जुन के तीर तो चल ही रहे थे।

—अच्छा हुआ! कमली बोली।

—तुझे याद है, दादी से अपन ने हमेशा कहा—दादी, मेरी बात सुन! मैं देख आया हूं, पानी का रंग लाल है। खून की तरह लाल! दादी मानती नहीं थी, जिद करती थी—पानी का रंग नहीं होता! सो आज उसकी काया सिराते हुए अपन ने उससे कहा—ले दादी! आज देख ले···

कमली ने उसकी तरफ भर-आंख देखा और चूड़ी सरकाते हुए बांहों को भरकाने लगी। उसके चेहरे पर रात का बासापन था। या शायद ठंडक की सफेदी। वह अपने गालों को रगड़ने लगी तो बाला ने देखा—उसके

बाएं गाल की सांवली चमड़ी पर खून की एक सूखी बूंद चिपकी हुई थी। वह उस पर उंगली फिराने लगी तो बाला ने पूछा—क्या हुआ ? उस साले लाला ने फिर काटा इतने ज़ोर से ?

—नहीं। कमली ने मामूली तरह से कहा—उसका वो एक दांत सोने का है न, वही गड़ जाता है'''कहते-कहते वह ट्यूब वैल की तरफ मुंह धोने लिए चली गयी।



अच्छा, ठीक है...

यह एक ऐसा हिल स्टेशन है, जहां सैलानी घूमने आते हैं। एकाध दिन रुकते हैं, फिर चले जाते हैं। इन सैलानियों के सहारे यह हिल स्टेशन चलता है।

मैं मुसलमान हूं—और मुसलमानों पर इस देश के लोग बहुत भरोसा नहीं करते। इस अनभरोसे की जिंदगी जीते हुए भी मैं एक भरोसे की जिंदगी जीना चाहती हूं क्योंकि इस देश के अलावा मेरा कोई देश नहीं है, इसीलिए मैंने एक स्कूल खोला है, ताकि अगली सदियों को रास्ता दिखाने वाले बच्चे मेरे पास आ सकें। मैं अगली सदी तो नहीं बना सकती, पर अगली सदी बनाने वालों को जरूर बना सकती हूं...

मेरे सामने साहिल खड़ा है—एक साढ़े तीन बरस का बच्चा उसे उसकी मां अभी छोड़ कर गयी है। साहिल अब मेरे बोर्डिंग स्कूल में भरती है।

जब साहिल की मां ने साहिल को छोड़ा, तो एक बहुत दर्दनाक मंजर मेरे सामने था। मेरे स्कूल में दाखिल कराके उसकी मां वापस क्यों और कहां जा रही थी, यह वह मासूम नहीं समझ पा रहा था...साढ़े तीन साल का साहिल—वह बराबर रो रहा था। उसकी मां भी बहुत रो रही थी। दोनों एक-दूसरे से अलग नहीं होना चाहते थे...मां की तकलीफ मैं समझ सकती थी, क्योंकि मैं खुद एक मां हूं और इस स्कूल की प्रिंसिपल हूं, जिसमें पढ़ने के लिए बहुत से बच्चे हर साल आते हैं।

लेकिन साहिल के बारे में स्थिति बिल्कुल दूसरी थी...साहिल को स्कूल में छोड़कर जाने के बाद उसकी मां के लिए एक शानदार कार स्कूल के फाटक के बाहर खड़ी थी और साहिल का पापा सामने एक बसस्टैंड पर

चुपचाप खड़ा था—अपना एक सफारी झोला लटकाये हुए। उसकी आंखों में आंसू थे या नहीं, मैं इतनी दूर से नहीं देख सकती थी।

जो नये बच्चे इस साल दाखिल हुए थे। उनमें साहिल ही सबसे छोटा था। बहुत तेज, ज़हीन और घुल-मिल जानेवाला। जब उसकी मां पहली बार स्कूल देखने के लिए आयी थी, तब साहिल भी उनके साथ था···हाथ मे दो कारें पकड़े हुए। उसकी मा मुझसे स्कूल के बारे में पूछताछ करती रही और साहिल फर्श पर बैठ कर अपनी कारें चलाता रहा···उस वक्त भी साहिल मुझे बहुत अच्छा और प्यारा लगा था···उसके घने बाल बार-बार सरक कर उसकी आंखों पर आ जाते थे और वह उन्हें अपनी बांहों से समेट कर ऊपर कर लेता था।

मैंने उससे पूछा था, "साहिल! आपको और खिलौने चाहिए?" तो उसने अपनी चमकती आंखों पर से बाल हटाते हुए कहा था, "मेले पाछ बात छी कारें हैं आंटी ··छायकिल, टक, जीप, फ्रैंड···"

मैं उसकी तुतलाती बात ठीक से नहीं समझ पायी थी, तो उसकी मां ने साफ कर दी थी, *'ये ट्रक को टक ही बोलता है, और इसका फ्रेंड है* टेडीबीयर, फ्रेंड पुकारता है उसे।"

साहिल को इन बातों से सरोकार नहीं था, वह तब तक उस कमरे मे भाग गया था, जिसमें के० जी० के बच्चों के खिलौने रखे थे···कांच की बड़ी खिड़कियों के उस पार सब कुछ दिखाई पड़ रहा था। इमारत के पीछे ही पहाड़ियां और चीड़ के पेड़ थे ··और उस कमरे में अकेला खड़ा साहिल एक हवाईजहाज से खेल रहा था। शायद चीड़ के पेड़ो को देख कर ही मुझे साहिल के बालों का ध्यान आया था। उसके बाल चीड़ के गुच्छे की झालर की तरह थे वैसे ही ओस से धुले, चिकने और चमकदार। अपनी बातचीत, ढंग, उठने-बैठने और खिलौनों से खेलने और चीजें मागने और फिर स्कूल [illegible]

दार बच्चा लगा था·· वह अपनी मां के लिए बोझ नही था।

नहीं तो ज्यादातर चिड़चिड़े और जिद्दी बच्चे, या पैसे की ज्यादती और प्यार की कमी से बिगड़े हुए बच्चे ही हमारे पास पढ़ने, या समझिए,

भरती होने आते हैं। उनके घरों [redacted] वैसे तो बराबर आते रहते हैं वक्त-बेवक्त स्कूल डोनेशन के लिए रुपये भी खुले हाथ से मिलते रहते हैं, लेकिन महीने में एक बार अपने बच्चे से मिलने के लिए उनके मां-बाप कभी-कभी नही आ पाते, माएं तो फिर भी आती हैं बाप शुरू-शुरू में एकाध बार आते हैं, फिर ज्यादातर नही आ पाते। साहिल को भी पहली बार लेकर स्कूल देखने के लिए शायद उसकी मां अकेली आयी थी, यही मैंने समझा था। लेकिन शाम को जब मैं कुछ मामूली-सी शॉपिंग के लिए निकली थी, तो बस्ती के सबसे बड़े डिपार्टमेंटल स्टोर में साहिल की मां एक साहब के साथ कुछ खरीदारी कर रही थी। सूखे मेवे, ऊनी शाल और शहद वगैरह। उन्होने ही मुझे देखा था।

"ओह आप!···सुनिए···आप साहिल के स्कूल की प्रिंसिपल हैं··· और ये साहिल के पापा! माई हस्बेंड···"

"आप स्कूल देखने नही आये?" मैंने साहिल के पापा से पूछा था।

"जी, बच्चों के स्कूल वगैरह माओं को ही देखने चाहिए। इफ दे फील सेटिस्फाइड, देन इट्स ऑलराइट···" उसके पापा ने कहा था।

"वैसे भी ये अभी दोपहर बाद यहा पहुचे हैं···मैं तो साहिल को लेकर कल शाम ही आ गयी थी···" साहिल की मा ने बात साफ कर दी थी।

"साहिल कहां है?" मैंने पूछा था।

"वही होटल मे खेल रहा है, आया के साथ···"

"बहुत प्यारा बच्चा है साहिल···अपने बोर्डिंग स्कूल मे उसे रख कर मुझे बहुत खुशी हासिल होगी!" मैंने कहा था।

"थैंक यू···टीचर···ही विल नॉट बी ए प्राब्लम चाइल्ड फार यू···" साहिल के पापा ने बहुत विश्वास और पुख्ता तरीके से कहा था, "स्कूल कब से खुलेगा?"

"अगले महीने 15 तारीख से···" मैंने जवाब दिया और नमस्ते करके चली आयी थी।

उस वक्त तक बस्ती का बाजार धीमा पड़ चुका था, अंधेरा उतर चुका था और चीड़ के चिकने मुलायम पत्तों के बीच से सर्द हवा बहने लगी थी, एक पल के लिए मुझे साहिल के बाल याद आये थे अगर वो बाहर खेल

रहा होगा, तो चीड़ के पत्तों की तरह ही यह सर्द हवा उसके बालों को भी सहला रही होगी।

मैं अपने बैग का सामान संभालती हुई उतरती पगडंडी से अपने घर की ओर चली गयी थी।

दूसरे दिन साहिल के मां-बाप दोनों आये थे। उन्होने साहिल की पूरे सेशन की फीस का चेक दिया था। उसके जरूरत के समान की लिस्टें मुझसे ली थी और साहिल के खिलौनो का एक बक्सा मेरे पास छोड़ कर चले गये थे, क्या फायदा···अगले महीने तो साहिल बोर्डिंग हाउस मे आएगा ही, तब दोबारा लाना पड़ेगा। यह बक्सा हम यहीं छोड जाते है उसकी साइकिल और बडीवाली मोटरकार भी।

"स्कूल में बच्चों के खेलने के लिए किसी चीज की कमी नही है···" मैंने कहा था, "साहिल अगले महीने आयेगा···तब तक···"

घर पर उसके पास और तमाम खिलौने हैं।" साहिल की मां ने कहा था और वे दोनों सब कुछ तय करके चले गए थे।

यह अच्छा भी था। क्योकि पहली बार मे छोड़ा हुआ बच्चा कभी-कभी बहुत ही उदास हो जाता है उसकी दुनिया ही बदल जाती है और वह समझ ही नही पाता। तब इन बच्चों की मासूम आंखों के खामोश सवालों के जवाब देना बहुत मुश्किल होता है। इन्हें इनके बिस्तरों में सुलाते वक्त कोई थपकी काम नही देती···घंटों ये सुबकते रहते हैं, कभी बेहतर रो भी पड़ते हैं, पर कैद पंछियों की तरह सुबकते-सुबकते सो जाते हैं। सुबह इनकी मासूम आंखो की पलकें भारी होती हैं और आंसुओं के हलके रेतीले निशान बाकी होते हैं फिर ये हिलमिल जाते हैं। दूसरे बच्चों को देख कर सब कुछ भूल जाते हैं और सुबह के उजाले में दिखाई पड़ती दुनिया के बारे में अचरज से भरे अपने छोटे-मोटे सवाल करने लगते हैं। 'आंटी वो क्या है?' 'मैडम वो क्या है?' फिर शाम तक के लिए उनकी दुनिया बस जाती है। खूब मस्ती करते हैं। कंपाउड में खेलते हैं, अपने क्लास में बैठ कर घर बनाते हैं। टूटे हुए पहिये जोड़ते हैं। कागज पर रंगीन पेंसिलों से अपनी दुनिया में रंग भरते हैं। चिड़िया, हाथी और मम्मी-पापा बनाते हैं। लेकिन सोने से पहले फिर बहुत अकेले हो जाते हैं। न सोने की जिद करते हैं।

फिर अपने-आप उनकी पलकें भारी हो जाती हैं और वे एक मिनट में सो जाते हैं। कुछ दिनों बाद फिर खुद ही बोलने लगते हैं—"मैं छोने जा रहा हूं!"

साहिल के मां-बाप चलने लगे, तो एक ही बात मुझे खटकी थी। साहिल की मां का आंसुओं से भीगा हुआ छोटा-सा रूमाल कुरसी के पास पड़ा रह गया था। क्योंकि साहिल को बोर्डिंग में दाखिल कराने की बात-चीत के दौरान उसकी मा की आंखें कई बार भर आयी थीं और उन्होंने उस रूमाल से अपनी आंखों को सुखाया था। पड़े हुए रूमाल को साहिल के पापा ने देखा था और चलते-चलते अपनी पत्नी को उन्होंने हलके से टोका था, 'तुम्हारा रूमाल!' साहिल की मां ने दो कदम पीछे पलट कर अपना रूमाल उठाया था, जिसे उसका पापा भी उठा कर दे सकता था। उस रूमाल में प्यार के आंसुओं की कहानी लिखी हुई थी। लेकिन साहिल के पापा के लिए वह कहानी शायद जरूरी नहीं थी। बस, इतनी-सी बात मुझे खटकी थी।

साहिल के मां-बाप अपने होटल चले गये थे। वे उसी दोपहर शहर लौट जानेवाले थे और अगले महीने साहिल बोर्डिंग हाउस में रहने आने वाला था।

लेकिन एक सुबह इसी बीच, जब हवा जरूरत से ज्यादा सर्द थी और चीड़ के पेड़ सुबह के कोहरे में सहमे हुए खड़े थे, मैं अपनी बहन को रिसीव करने बसस्टैंड पर गयी थी। वह ओवरनाइट बस से आ रही थी।

कोहरा बहुत गहरा था, और शायद इसी वजह से ओवरनाइट बस लेट हो रही थी। काफी लोग बसस्टैंड पर बस के इंतजार में खड़े थे, क्योंकि इसी बस से सब्जियां आती हैं, दूध आता है, कभी-कभी बस्ती की बाकी रसद और सुबह का एक दिन पुराना अखबार आता है।

इस ओवरनाइट बस से बस्ती के व्यापारी ही ज्यादा सफर करते हैं। शहर से सारा सामान लाने के लिए। इसीलिए इस बस को हम लोग रसद-बस पुकारते हैं।

मुझे ताज्जुब हो रहा था कि इस रसद-बस से सफर करने की बात

मेरी बहन ने क्यों तय की ? ज्यादा आरामदेह एयरकंडीशंड डीलक्स बसें भी चलती हैं और सैलानी व बस्ती के पढ़े-लिखे, खाते-पीते लोग ज्यादातर इन्हीं अच्छी बसों में आते हैं।

बसअड्डे पर चाय की दुकानों के पास छोटा-मोटा जमघट था। कुछ कुत्ते दुबके हुए सुलगती अंगीठियों के पास बैठे थे। एकाध मजदूर अपनी झल्लियां टिकाये, उन्हीं के सहारे आराम कर रहे थे। बाकी दुकानें अभी बंद थी और कोहरे की चादर में लिपटी हुई थी।

शहर से आनेवाली पहाड़ी सडक कोहरे की सुरंग ही बन गयी थी और पीछे की पहाड़ियां बिल्कुल गायब थी। सर्द हवा से सिर्फ चीड़ के पेड़ कुछ रेशमी-सी बातें कर रहे थे। और चीड़ के पत्ते हलके से हाथ हिला-हिला कर शायद आनेवाली रसद-बस को बुला रहे थे। कोहरे की वजह से आने वाले की आहट पहले आती थी, उसके कदम बाद में।

तभी ऊपर को आती कोहरे की सुरंग मे से घरघराहट की आवाज आई फिर बस की रोशनियां पिघलते हुए मोम की तरह झिलमिलाने लगी। रसद-बस पहुच गयी थी। बस के रुकते ही रात भर के थके लोग अपनी चादरें, कंबल और दोहरें ठीक करते उतर पड़े थे। दो-तीन लोगो के बाद मेरी बहन उतरी, उसके चेहरे पर थकान, या रात के सफर के कोई खास निशान नही थे। वैसे भी वह उम्र मे मुझसे छोटी है और शहर की यूनिवर्सिटी में लायब्रेरियन है।

उसके पीछे उतरनेवाले आदमी को मैंने तब जाना, जब उसने मेरी जान-पहचान करवायी। वह आदमी 29-30 से ज्यादा का नही था। पढा-लिखा जहीन, पर वक्त का मारा लग रहा था। वे दोनों ओवरनाइट बस से साथ-साथ आये थे और उनकी जान-पहचान बस में ही हुई थी। यह मुझे तब पता चला, जब हम घर पर बैठे चाय पी रहे थे।

बहन ने बताया, "आपा, इनका नाम चन्द्रशेखर सिन्हा है। ये पहले यूनिवर्सिटी कॉलेज मे लेक्चरार थे, फिर किसी प्राइवेट फर्म में चले गये। वहां से इनकी जिंदगी ने एक तकलीफदेह मोड़ ले लिया है और ये यहां अपने बच्चे की तलाश में आए हैं। इसी सफर में हमारी जान-पहचान हुई। मैंने कहा, मेरी आपा बच्चों के एक बोर्डिंग स्कूल की प्रिंसिपल हैं, वो

आपकी शायद कुछ मदद कर सकूँ।"

चंद्रशेखर ने मुझे देखा, मैंने उसे। बहन चाय पीती रही।

"आप अपने बच्चे की तलाश में आये हैं। मैं बात को समझ नहीं पायी। आपका बच्चा खो गया है क्या?" मैंने पूछा!

"जी नहीं। अब आपसे क्या छुपाना। और इस झूठी इज्जत में क्या रखा है।" कहते-कहते चंद्रशेखर कुछ अटका, तो मेरी बहन ने शह दी, "बता दीजिए। बता दीजिए। आपा बहुत मॉडर्न हैं। इनके सामने आपको शर्मिंदा नहीं होना पड़ेगा।"

मैंने गौर से बहन को और चंद्रशेखर को देखा, कहीं पर कुछ अटकाव था, तो बहन ने बात को एक गहरा मोड़ दे दिया, "आपा, बस मैं हमारी बातचीत अदब···लिटरेचर से शुरू हुई थी। मैं मुंशी प्रेमचंद की ट्रांसलेटेड कहानियां पढ़ रही थी, तो इन्होंने टोका था—आप मुंशी प्रेमचंद को अंगरेजी में पढ़ रही हैं, बस, बातचीत वहीं से शुरू होते-होते मुंशी प्रेमचंद के तमाम किरदारों से होते हुए हम प्रेमचंद के खयालातों-विचारों पर आ गए और उनकी महाजनी सभ्यतावाली बात पर अटक गये।"

"जी हां।" चंद्रशेखर ने कहा, "प्रेमचंद के अलावा और कोई लेखक ही नहीं, जिस पर मिल-जुल कर बात की जा सके। उन्हें सभी पढ़ते हैं, या किसी वक्त पढ़ चुके हैं। नहीं तो, ज्यादातर जिस लेखक को आपने पढ़ा है, उसे मैंने नहीं पढ़ा है, या जिसे मैंने पढ़ा है, उसे आप नहीं जानतीं।'

मुझे चंद्रशेखर की बात अच्छी लगी। क्योंकि प्रेमचंद्र और गांधी के बाद एक कौम तो बन चुकी है, लेकिन इस मिली-जुली कौम के जहनी सवाल अभी कॉमन नहीं बन सके हैं। वो अभी तक हिंदू या मुसलमानों, या फिरकों के सवाल बने हुए हैं। क्योंकि उनकी बुनियाद नहीं बदल पायी है··· पैसे की पैदावार और दौलत ने हिंदुस्तान के एक सेक्शन की शक्ल बदल दी है उसने पैसे को अपना मजहब, अपना धर्म बना रखा है, लेकिन वह पैसे को दूसरों का मजहब या धर्म नहीं बनने देता। वह क्लास उनके लिए मंदिर या मसजिद बनवा देता है, ताकि वो धर्म को दीवारों में तलाशते रहें। अजान या आरती में खोजते रहें ··

हवा सर्द थी। कोहरा काफी छंट चुका था और चीड़ के झालरदार

पत्ते अपने हाथ हिला रहे थे। मुझे एकाएक लगा कि चंद्रशेखर के बाल भी चीड़ के झालरदार पत्तों की तरह हैं और वह भी उस बच्चे माहिल की तरह अपनी आंखों से बाल हटाता रहता है, कि तभी चंद्रशेखर बोल पड़ा, "देखिए मैं एक हारा हुआ आदमी हूं! इस महाजनी सम्यता में मैं भी अपनी बीवी और बच्चे को हार चुका हूं। यहां वही जीतता है। जिसके पास पैसा है।"

और इतना कहते-कहते चंद्रशेखर तकलीफ की अंधेरी दुनिया में उतर चुका था, वह बोलता गया, *"इसमें न मेरी गलती है, न मेरी बीवी की···* लेकिन हम एक दोगली अर्थ-व्यवस्था में रह रहे हैं। यही वह महाजनी सम्यता है; जिसकी तरफ प्रेमचंद ने बहुत पहले इशारा किया था। मैं प्रेमचंद के फलसफे में नहीं जाना चाहता। मैं अपनी जिंदगी के सफे पलटना चाहता हूं।"

और उसने—चंद्रशेखर ने—जो सफे पलटे, वो ये थे—

सफा एक : मैं प्राध्यापकीय जिंदगी छोड़कर कुछ और क्रिएटिव करना चाहता था, इसलिए मैंने कॉलेज की लेक्चररशिप छोड़कर एक प्राइवेट कम्पनी में नौकरी खोज ली। यह प्राइवेट कम्पनी नयी थी और बहुत तेजी से विकास कर रही थी। इसके मालिक खेमराज ने देखते-देखते एक सल्तनत बना ली थी। पैसे से पैसा बनता है, यह वह मानकर चलता है। और जो वह तय कर लेता है, उसे हासिल करके रहता है। फैक्टरी की ब्रांच के लिए उसे एक प्लाट पसंद आ गया था। उस प्लाट को पाने में बड़ी दिक्कतें आयी, लेकिन वह खरीद कर रहा। इस नयी नौकरी में एक सुविधा यह थी कि अपनी पत्नी के साथ मैं कम्पनी के गेस्ट हाउस में रहने लगा। मेरी पत्नी विभा भी काम करने लगी। वह खेमराज की सेक्रेटरी के रूप में काम देखने लगी। विभा असम की है। यहां पश्चिम भारत में उसका कोई रिश्तेदार नहीं है, इसलिए हमारी जिंदगी चौबीसों घंटे एक-दूसरे के इर्द-गिर्द ही घूमती थी। घरों के टूट जाने से, यानी ज्वाइंट फमिलीज के बिखर जाने से शायद एक अच्छी बात यह हुई है कि आदमी औरत के बीच में सच्चाई की जरूरत बढ़ गयी है।

सफा दो : मुझे नहीं मालूम, कमजोरी के किन पलों में विभा और

खेमराज के सम्बन्ध हो गये और जैसा कि मैंने कहा कि आदमी औरत के बीच सच्चाई की जरूरत बढ़ गयी है, उसी जरूरत के तहत विभा ने अपने सम्बन्धों वाली बात मुझसे मंजूर की और यह भी उतनी ही सच्चाई से मंजूर किया कि वह इन सम्बन्धों को जारी नहीं रखना चाहती, क्योंकि इस तरह के दोहरे सम्बन्धों के लिए उसकी आत्मा गवाही नहीं देती।

सफा तीन : लेकिन खेमराज इसके लिए तैयार नहीं था। उसने जो पा लिया था, उसे वह छोड़ना नहीं चाहता था। नवधनिकों ने अपनी नयी तहज़ीब की शर्तें पैदा कर ली हैं। यह शर्तें पहले नहीं थीं।

सफा चार : खेमराज ने बिना हिचक मुझसे कहा था, "क्यों ? शेयर करने में क्या दिक्कत है ? मैं कीमत चुकाने को तैयार हूं। इस दुनिया में हर चीज बिकती आयी है, सिर्फ उसकी कीमत अलग-अलग होती है। मैं तुम्हारी बीवी और तुम्हारे बेटे, दोनों की कीमत चुका सकता हू !" मैडम यह आदमी का ईमान, या उसका विश्वास नहीं—उसका पैसा बोल रहा था। नयी महाजनी सभ्यता का पैसा, जो विश्वास और चाहत के रिश्ते बनाता नहीं खरीदता है।

सफा पांच : इस खरीद-फरोख्त के बाजार में मैं हार गया। मुझे नौकरी छोड़नी पड़ी। सवाल रहने की जगह का था। सवाल बेटे की जिंदगी का भी था। नौकरी विभा ने भी छोड़ दी थी और हम भयानक अपमान और मजबूरी के हालात में फंस गये थे। हमारी सच्चाइयों के तीन टुकड़े हो गये थे। हर टुकड़ा सच्चा था, सही था या नहीं, यह बिलकुल दूसरी बात है!

अपनी जिन्दगी के ये पांच सफे खोल चुकने के बाद चन्द्रशेखर ने कहा, "मेरा बेटा खोया नहीं है। उसे यहां के किसी बोर्डिंग स्कूल में दाखिल कराने लाया गया है, मैं उसी की तलाश में आया हूं। मैं अपने बेटे से मिलना चाहता हूं।" कहते-कहते चंद्रशेखर चाय का प्याला रखकर आंखों में भर आये अपने आंसुओं का घूंट पी गया था।

हवा का एक सर्द झोंका चीड़ के पेड़ों के बीच से गुजर गया था।

"वो अभी बहुत छोटा है, समझेगा कुछ नहीं।" कहते-कहते चंद्रशेखर

का गला रुंध आया था, लेकिन उसने खांसने के बहाने बात बीच में ही छोड़ दी।

"आपके बेटे का नाम क्या है?" मैंने पूछा था।

"साहिल सिनहा!" कहते हुए चन्द्रशेखर ने अपने बाल ऊपर किए थे, तो मुझे लगा था, साहिल अपनी बाह से अपने बाल ऊपर कर रहा है।

"साहिल तो मेरे ही बोर्डिंग में आने वाला है।"

"कब ?"

"कल! कल 15 तारीख है। कल से स्कूल खुलेगा।"

"वह पहले आया था ?"

"हां! उसके मम्मी-पापा," कहते-कहते मैं अटक गयी थी।

"मैं समझ गया···कोई बात नहीं। विभा ने खेमराज को अपना हस्बैंड बताया होगा। औरत को अपनी समाजी इज्जत रखने के लिए सब कुछ बोलना पड़ता है। मैं विभा की मजबूरी समझ सकता हूं। साहिल तो अभी नासमझ है। तो कल साहिल आएगा!" चन्द्रशेखर की आंखों में बुझी हुई चमक थी।

"आना तो चाहिए, वो लोग उसकी साल भर की फीस का चेक भी जमा कर गये है।" मैंने कहा था।

"आप एक एहसान करेंगी मुझपर ?"

"क्या ?"

"साहिल की फीस के रुपये मैं भेजूंगा जा कर। कहीं से भी, कैसे भी और हमेशा भेजता रहूंगा। आप खेमराज के पैसे मत लीजिए। प्लीज!"

"यह कैसे हो सकता है। मैं तो उनका चेक ले चुकी हूं!"

"तो उस चेक को आप रखे रहिए। मैं साहिल के पैसे आपको भेज दूंगा। प्लीज, कम-से-कम मुझ जैसे बदनसीब बाप की इतनी इज्जत तो रख लीजिए!"

"लेकिन मैं तो चेक कैश करा चुकी हूं।"

"ओह! पैसे से तो मैं गरीब था ही···आज भावनाओं से भी गरीब हो गया। मैं···मैं साहिल को शायद कभी नहीं समझा पाऊंगा कि मैं···मैं उसके लिए क्या चाहता था। बड़ा होकर वो मेरे बारे में वही सच मानेगा,

जो सच आज पैसे ने साबित कर दिया है। खैर, गलत साबित होते रहने के अलावा मैं कर भी क्या सकता हूं।" कहते हुए चन्द्रशेखर ने एक गहरी सांस ली थी।

फिर वो मुझे और मेरी बहन को धन्यवाद देकर चला गया था। उसके बाद दूसरे दिन वह दूर बसस्टैंड पर खड़ा नजर आया, जब साहिल की मां साहिल को छोडकर जा रही थी…

और साहिल बेतरह रो रहा था, वो अपनी मां को छोड़ ही नहीं रहा था। उसकी मां भी रो रही थी।

तब मैंने साहिल की मां से कहा था कि बेहतर होगा, आप इसे बता कर न जायें…

"नहीं, साहिल बहुत समझदार है। बताकर नहीं जाऊंगी, तो ये मुझे कभी माफ नहीं करेगा!" साहिल की मां ने कहा था।

"मम्मी, बताओ न, मुझे क्यों छोल के जा रही हो?" मासूम साहिल ने बिसूरते हुए पूछा था।

साहिल के बाल माथे से नीचे तक फैले हुए थे। सर्दी के बावजूद उसकी कनपटियों के रोयें पसीने से चिपक गये थे और उसकी आसू भरी आंखें बालों की झालर के पीछे से झांक रही थीं। साढ़े तीन साल का साहिल जैसे अपनी मां से नहीं, पूरी दुनिया से ये सवाल पूछ रहा था—मुझे क्यों छोल के जा रही हो? क्यों-क्यों…?

सच्चाइयों के तीनों टुकड़े मेरे सामने खड़े थे। लेकिन इन सच्चाइयों का सच वक्त की किसी सतह पर कहीं और था…

तभी मैंने देखा, साहिल की मां ने मजबूर होकर उसे डांटा था, "साहिल! ज्यादा जिद करेगा तो मार खायेगा। तुझे आंटी के पास रहना है और यहीं पढ़ना है समझा!"

साहिल ने सहम कर अपनी मासूम आंखों से मां को देखा।

"समझा! ठीक है न!" साहिल की मां ने बहुत मजबूरी, लेकिन सख्ती से कहा था।

"अच्छा! थीक है।" और अपनी नन्ही-नन्ही हथेलियों पर अपने ही आंसुओं के निशान देखता साहिल खड़ा रह गया था। □

जामातलाशी

ऐसा नहीं है कि हमारी बिरादरी नहीं है। पूरी कंट्री में हमारी बिरादरी फैली है। बापू जब कोकीन खाके बहकता था, तो बताता था'''लेकिन इससे पहले बापू के बारे में बता दूं! मेरा बापू अखबार के कारखाने में फोल्डर था। उसका प्रमोशन जमादार से फोल्डर में हुआ था। जिस दिन उसका प्रमोशन हुआ, तो हमारे झोपड़े में मछली की सिरी और तेल बना था'''उसी दिन थोड़ी-सी चुस्की लेकर बापू ने कहा—"अपने बबवा को तो मैं आदी-द्राविड़ बना दूंगा, मद्रास भेज के पढ़ी-लिखी लड़की से शादी करवा दूंगा'''तब देखता हूं, इन साले बाह्मनों को! ''''" बापू की चुस्की नहीं, गुस्सा चढ़ गया था'''

लेकिन इससे पहले आप यह तो जान लो कि बापू को ऐंगर क्यों चढ़ता था? ऐंगर होने का कारन था। बापू सैनिटरी कामगार मोरचा का संयोजक था। उसको सब नेताजी पुकारते थे।

बापू ने प्रमोशन पर जो पार्टी दी थी, उसमें मोरू भी मौजूद था''' लेकिन इससे पहले मोरू के बाबत इनफारमेशन दे दूं—मोरू हमारी बिरादरी का मेंबर है। मैं जब फोर इयर का था, तो हमारी मदर ने बापू को छोड़ दिया था। शी लीव माई बापू और वो मोरू के साथ चली गई थी। मेरी मदर बहुत समझदार औरत है'''उसने मोरू को मौरिस करके बनाया और कश्मीरी गेट के एक होटल में बैरा करके लगवा दिया। तभी से मोरू तेल चुपड़े पत्तीदार बाल रखता है और मेरी मदर की बहुत रिस्पेक्ट करता है'''

पार्टी और औरत लोग का सवाल नहीं उठता। लेकिन मेरी मदर ने बापू के वास्ते सालन भेजा था। उसको बापू की सब आदत और टेस्ट पता

है, तो अपना करके उसने सालन भेजा। सालन खाके बापू तिरपति हो गया था।

लेकिन इससे पहले बापू के बुरे डेज की बात बता दूं···अखबार के कारखाने में आटोमेटिक मशीन आ गयी थी···मशीन लगी, तो बापू बेकार हो गया। उसके साथ बीस-बाईस लोग करके भी बेकार हुए, उस टाइम मेरी मदर मोरू के साथ बापू को समझाने आयी—वो बहुत टीचर औरत है। उसने कहा—"मशीन से क्यों घबराते हो···मशीन कुछ दिन दुख देगी पर उसके बाद अपने लोग का उद्धार करेगी! जब ऊंची जात का आदमी अभी तक हमारा उद्धार नहीं किया, तो अब मशीन करेगी!" फ्लश-संडास की मशीन दस बरस पहले देखी थी?···अभी फ्लश की जंजीर-मशीन आई, तो हमारा उद्धार हुआ कि नहीं? तब तक कोई और काम कर लो···फिर इसी मशीन से काम बढेगा, तो दूसरी तरह का काम मिलेगा!"

हमने बताया न कि हमारी मदर बहुत टीचर औरत है। अब ऐसी टीचर औरत तो फोल्डरवाले की औरत करके नहीं रुकेगी? वो मोरू का वाइफ करके चली गई··

बापू बेकार हुआ, तो हमारी आदी-द्राविड बनने वाली बात खतम हो गई। नहीं तो हम सेवेंथ भी पढ लेते, तो मद्रास जाके काम करते। आदी-द्राविड हो जाते, एण्ड उधर शादी बनाके लौट आते···

खैर वो तो नहीं हुआ।

बापू और उसके बाईस लोग आफिस से लड़ते रहे···लेबर की छटनी कैसे हो सकती थी? आफिस वाले पगार देते रहे, पर काम नहीं दिया। इस खातिर बाईस लेबर उधर पिछली वाली सड़क पर गोल बना के बैठते, अखबार बिछाते और दिन भर ताश-पत्ता गैंबिल खेलते। गैंबिल में बैठे-बैठे थक जाते, तो कोकीन खाते···उधर जामुन के नीचू जिधर वर्कशाप बनी है, पीपल के नीचू उधर हो, जहां मठिया बनी है शंकर की। शंकर आदी-द्राविड है न, हम लोग का···गौरा-पारवती का हस्बेंड···

उधर बापू बैठते, कोकीन खाते, तो हमारे को बधवा करके बुलाते। धीरे-धीरे कोकीन की चुटकी चल निकली। बापू सबसे पैसा जमा करता,

फिर हमारे को पान वाले के पास भेजता, उधर पुलिस के हेड-क्वाटर के पास। उधर चालू दुकान थी। रात तक माल मिलता था।

लेकिन इससे पहले आपको बता दूं कि उधर ही हमने जमुना के साथ पहला मीटिंग किया था। वह पान वाले का गर्ल था। उसका बापू कहीं कोकीन लेने गया, तो जमुना के साथ अपना मीटिंग एकदम जम गया। वो देखती, मैं देखता। मैंने बीड़ी मांगी, तो उसने झिड़क दिया—बीड़ी मत पिया कर!

"क्यों?"

"सांस में बदबू आती है।"

"तुझे जामुन अच्छी लगती है?"

"क्यों···अच्छी लगती है, पर तुझे क्या?"

"क्यों, मुझे क्यों नहीं ··फिर बीड़ी पीने को क्यों मना करती है?"

तो जमुना की आंखें जुगनू की तरह चमकी और होंठ लाल हो गए··· वो जल्दी-जल्दी पानों पर पानी छिड़कने लगी, तब तक उसका बापू आ गया और हमारा मीटिंग खत्म हो गया।

उसके बाद तो जमुना बहुत बार मिली ··मैनी टाइम्स·· राजघाट, विजयघाट···शांतिवन···मैंने उसे हर घाट पर कसमें खिलाईं, उसने गांधीजी, नेहरूजी, शास्त्रीजी—सबकी कसमें खायी, लेकिन अपने को प्रामिज नहीं हुआ, अपना दिल प्रामिज नहीं करता था कि जमुना लाइफ-लांग हमारा साथ देगी, फिर एक हम उसको बोला—देख जमुना, मैं दिल्ली शहर की लावारिस लाशें उठाता हूं···जिनका कोई नहीं, उन्हें मरघट तक पहुंचाता हूं···

इससे पहले कि मैं आगे की बात बताऊं, जमुना ने तपाक से पूछा "मैं लावारिस हो गयी, तो तू मेरी लाश उठायेगा?"

मैं समझ गया कि जमुना प्रामिज नहीं निभायेगी।

लावारिस लाशें उठाने के लिए मुझे दस रुपया मिलता था। दिन में दो-तीन लाशें तो हो ही जाती थीं···इनकम हमारी कम नहीं थी। बापू को हजार मिलता था, दो-ढाई हजार मैं सट्टा कर लेता···बापू हजार-डेढ़ हजार ताश-पत्ता गैंबिल में हारता था, लेकिन उसका आधा वह कोकीन से

कमा लेता था ··· पैसा तो ठीक ही था, लेकिन रिस्पेक्ट नहीं था।

हमारे को कोई आदी-द्रविड़, वाल्मीकि, प्रणव या महार नहीं बोलता था। सब हमारे को मेहतर, चूड़ा और डोम ही बोलते थे। बापू को इसकी केयर नहीं थी। वह उस गंदी सड़क पर अखबार बिछा कर ताश-पत्ता गैंबिल खेलता, कोकीन खाता और ऊपर से जो जामुन गिरता, उसे गाली देकर एक तरफ फेंक देता ··

जमुना को जामुन बहुत पसंद थी। मैं बापू की गैंबिल पार्टी में कुछ समय के लिए चला जाता। खेलता नहीं था, पर जामुन बीनता था। जामुन में गूदा नहीं पड़ा था, गरमी बहुत थी और पावस भी नहीं हुआ था। जमुना जामुन तो ले लेती थी, पर अपने को प्रामिज बनता नजर नहीं आता था।

काम तो हर दिन रहता था, लेकिन टाइम भी बहुत करके रहता था। जमुना का बापू जब अपनी दुकान का फट्टा बंद करके चलता था तो जमुना उसकी मोटरसाइकिल पर पीछे बैठती थी। आइ० टी० ओ० के पुल से वे जमुना-पार अपनी बस्ती में जाते थे। पीछे बैठी जमुना टार्च-बत्ती पकड़े होती। गयी रात पुल से क्रास करते, तो बहुत दूर से मैं उन्हें पहचान लेता था। जमुना की टार्च-बत्ती कहीं-कहीं जलती-बुझती रहती थी। यह तो जमुना को भी पता था कि आधी रात गये में कभी-कभी उसके रास्ते में खड़ा रहता हूं। किसी अंधेरे टुकड़े में, उसने भागती मोटरसाइकिल से टार्च-बत्ती करके दो-चार बार हमारे को देखा भी था। उसका बाप तो पुलिसवाले की तरह दनदनाता चला जाता था।

"कल तूने मुझे देखा था?"

"नहीं तो!" जमुना कहती थी, तो मुझे प्रामिज टूटता लगता था।

"तू-टार्च-बत्ती लेकर क्यों चलती है?"

"कहीं बापू की गाड़ी खराब हो जाए तो?"

"मैं गाड़ी खरीद लूं?"

"क्यों?"

"तेरा टार्च-बत्ती चमकाना बहुत अच्छा लगता है।"

"दिन में कोई टार्च जलाता है?"

"क्यों, रात में कभी नहीं बैठेगी?"

जमुना ने तो रिप्लाई कर दिया।

इसके बाद मेरा टाइम ज्यादा करके मुर्दाघरों के आसपास ही पास होता। मुर्दों की महक, कच्चे बर्फ की महक और मुर्दाघरों से बहती मुर्दा पानी की नालियां···लाशों के लोथड़े।

मैं मदर के पास जाना चाहता था, उसका कंसल्ट जरूरी लगा। झोंपड़े पर पहुंचा, तो पता चला कि वो मि॰मौरिस के साथ रुड़की चली गयी है। मौरू को रुड़की के किसी अच्छे होटल में चांस मिल गया था।

बस इसके बाद सब ब्रोकन करके होता चला गया। बापू आधा पागला—हॉफ मैड हो गया ··वह इंग्लिश बोलने लगा। झोंपड़े में बैठ के रोता रहता था।

लेकिन इससे पहले आपको यह तो बता दूं कि झोंपड़ा भी बापू का नहीं है। आपको दिल्ली आइ॰ टी॰ ओ॰ का पता है। उसी के अपोजिट पुलिस दफ्तर है। वहीं, जहां जमुना की दुकान है। उसी के बैक पर टूटी-फूटी सड़कें पड़ी हैं। एक कचरा मैदान पड़ा है, जिस पर कोई आचार्य नरेंद्रदेव भवन नाम का पत्थर लगा है। अरुणा आसफ अली ने उसका इन-आगुरेट किया है, उस मैदान में हमारी बस्ती के चिलड्रन फटा कागज, प्लास्टिक, लोहा-लंगड़ करके, मतलब कि रैग पिकिंग करते हैं। उसी कचरा मैदान से एक सड़क जाती है। मोड़ पर टाइगरवाला पाइप लगा है। उसी मोड़ के पीछे बस्ती है। उसी बस्ती में झोंपड़ा है। यह झोंपड़ा बापू का नहीं। ईमान करके बताऊं, तो यह झोंपड़ा मेरी आंटी मेरी बुआ का है। आंटी-बुआ का आदमी तमिलनाडू में जा के लोटी हो गया। लोटी से वह आदी-द्रविड़ बनता···बना, नहीं बना, इसका कोई इन्फार्मे हमारे पास नहीं है। पर जब वह गया, तो आंटी-बुआ के पास तीन धोतियां थीं। वह नहीं लौटा, तो एक धोती रह गयी। टाइगरवाले नल पर तो नहाना मुश्किल है···चलती सड़क है। वैसे बस्ती के लोग ही गुजरते हैं और हमारी बस्ती में किसने किसको नंगा करके नहीं देखा, लेकिन टाइगर नल पर नंगा नहाने में तो फरक है, इस खातिर आंटी-बुआ अखबार कारखाने के बाहर बने चुंगी के यूरीनल में नहाती थी। उधर बराबर करके पानी आता है। जब तक अपनी धोती सुखाती थी, तब तक वो यूरीनल में छुपके

रहती थी। बस, उसका फार्चून खुल गया। लाटरी का टिकट बेचने वाले ने उसे देखा, दो धोतियां दीं और अपने घर ले गया। तभी से बापू ने आंटी-बुआ के झोपड़े पर कोचमेट कर लिया।

अब आधा पागल बापू चीखता है—इंगलिश बोलता है—"हमारा बड़ा-बड़ा नेता लोग दादा सामंत, कोल्हटकर सब बोला···अखबार कारखाने मे आटोमेशन से बेकारी बढ़ेगी···तुम कंपूटर लगा के लेबर के पेट पर लात मारोगे···आटोमेशन कंपूटर करने का है, तो नया बनता कागज मिल मे कंपूटर लगाओ। पुराने कारखानों में आटोमेशन मत लाओ! कंपूटर इधर लगाने का है, तो लेबर को टेनिंग दो···पर सब साला कान में तेल डाले बैठा है। साला पूरा कंट्री बाहमन हो गया है। ऊपर से तेरी माई मुझको टीचिंग देती है—मशीन अपने लोग का उद्धार करेगी! मेरा उद्धार करके खुद मोरू के पास चली गयी! अरे तेरी माई बहुत अच्छी थी बचवा···बहुत अच्छी थी रे"··· और बापू मदर को याद कर-करके रात भर रोता रहा। बाहमन हो गए कंट्री को कोसता रहा।

अपना दिल भी टूटता था। इस करके कि जमुना ने शादी कर ली थी। हमने उसका शादी मान लिया। तब सोचा, कुछ और किया जाए। हमने वर्कशाप का रास्ता पकड़ा। लावारिस लाश उठाना बंद कर दिया। वर्कशाप मे वही—पाना दे, आठ नंबर न्यूट्रल में डाल···जब तक सीखा और सैलरी लगने का टाइम आया, तभी एक रोज—दिन मंगल करके था, कैंटीन का बलराम आया, उसने बताया कि जमुना ने मिट्टी का आइल डाल के आग लगा ली है। मैं अस्पताल पहुंचा, तो जमुना वार्ड दो बर्निंग मे पड़ी हुई थी। उसका हस्बेंड, बापू, रिलेटिव सब मौजूद थे। पुलिस बयान ले गई थी जमुना की जली हुई बॉडी नंगी पड़ी थी, ऊपर लाल कबल टेंट था···आठ खाली बोतल ग्लोकोज की नीचे पड़ी थीं। वह पानी के लिए तरस रही थी चीखती थी ··

मैं तो आधा बेहोश हो गया था। जमुना के जले हुए होंठ बाहर तक फैल गए थे, जो कभी लाल हो जाते थे। ऐंठी हुई अकड़ी हुई हाथ की उंगलियां, जला हुआ पेट, पीठ पर पीपल के पीले पत्तों जैसे दाग, उधड़ी

और जली हुई खाल…

मुझे उसके बापू के अलावा कोई पहचानता नहीं था। मैं कांच की खिड़की के पास चिपका उसे देख रहा था। उसका हस्बेंड बाहर खड़ा था। जमुना के होंठ कभी जामुन खाये लगते थे, कभी जले हुए! पानी को तरसती…छटपटाती…

तभी दो लोग उसकी चूड़ियां और बिछुए काटने आए थे। जमुना की बॉडी फूल रही थी। चांदी की चूड़ियां कलाइयों में कस रही थीं। कांच की चूड़ियां तो नर्सों ने पहले करके ही तोड़ दी थी। चूड़ी काटने वाले भीतर गए, उनके हाथ के गिरगिट की शकल जैसी कैंची थी। मुझे मोड़ का टाइगर नल की याद करके आया। चूड़ी काटने वाले जमुना के बिस्तर तक जाकर लौट पड़े, "कुड़ी ते टुर गई!"

डाक्टर आया। उसने अक्सीजन दी। कुछ देर वेट किया, पल्स देखी, आखें देखी और हाथ हिलाकर चला गया। तभी दरोगा आ गया। कुछ देर तो उसने कुछ नहीं बोला फिर कोई दफा बोलने लगा—308…498… उसने जमुना के हस्बेंड और घरवालों के लिए पूछा, पता लगाया, पर उसके बापू के अलावा कोई नहीं था। जमुना के हस्बेंड को पुलिस ने एक्यूज बनाया था। उसका हस्बेंड पुलिस को तड़ी देकर भाग गया था। थानेदार चीखा था—"साला भाग के कहां जाएगा!"

जमुना की नंगी लाश को तब तक अस्पताल के खलासियों ने चादर में जैसे-तैसे लपेट दिया था। उसकी बॉडी दो चादरों के बाद भी इधर-उधर से निकल पड़ती थी।

उस टाइम रात थी।

पहिये वाले स्ट्रेचर पर उसकी बॉडी डाल कर वे उसे मुर्दाघर में ले जा रहे थे। मेरे पैर नहीं रुक पा रहे थे। अंधेरे में मैं पीछे-पीछे चलता गया। अस्पताल में सन्नाटा था। स्ट्रेचर के पहिये थे, उनकी आवाज थी और पानी की थैली की तरह थरथराती जमुना की बॉडी थी।

मुर्दाघर में शायद बर्फ नहीं था, या जगह नहीं थी। स्ट्रेचर वाले उसे एक बाथरूम में ठेल गए। कुछ देर वे बाहर बैठे बीड़ी पीते रहे, फिर शायद सोने चले गए।

मैं अंधेरे मे खड़ा रहा।

तभी आइ० टी० ओ० के पुल से जमुना के बापू की मोटसाइकिल पास हुई। जमुना ने टार्च-बत्ती चमकायी। गाड़ी रुक गई। सिर्फ जमुना मेरे तक आई। पास आ के सॉफ्ट बोली, "सुनता है···मैं लावारिस हो गई, तो तू मेरी लाश उठायेगा?"

मैंने तब बाथरूम का दरवाजा खोला। घुप्प अंधेरा था। एक पाइप धीरे-धीरे टपक रहा था। सिर्फ उसकी साउंड थी। कांच की एक मटमैली खिड़की पर उजाला था। बाथरूम में जमुना की महक थी। मैंने बाथरूम का दरवाजा भेड़ दिया। मैं जमुना के पास खड़ा था। अपने को फिर प्रामिज नहीं हुआ, लेकिन मैं जमुना को जिलाना चाहता था। उसे छुओ, तो वह हिलती थी, पर उसमें सांस नहीं आती थी। नल सांस ले रहा था। मैंने जमुना को हलके से छुआ, तभी एक छिपकली जमुना की बॉडी पर से निकल गई। चादर का एक सिरा कांप गया। मैं भी शेक हो गया।

अंधेरा और बढ़ गया। सन्नाटा भी बढ़ गया। गरमी और उमस भी। छिपकली भी दीवार पर जाकर बोलने लगी।

मुझे नहीं मालूम, मैं बाथरूम में कब सो गया। वह तो तब पता चला, जब रात वाले हवलदार की आवाज ने मेरे को साला-हरामजादा' करके जगाया। स्ट्रेचर वाले भी खड़े हुए थे।

मुझे उसी वक्त हिरासत मे ले लिया गया और थाने में एक झनझनाता हुआ थप्पड़ मेरी कनपटी पर पड़ा, "तलाशी लो साले की। चूड़ियां चुराने गया था! जानता है, साले ये तिलक रोड थाना है!"

फिर दूसरा मुक्का मुझे जमुना के हस्बेंडवाली बस्ती के थाने में पड़ा, "जानता है साले, ये मंगोलपुरी थाना है!"

तीसरा डंडा मेरे घुटनों पर पड़ा, "जानता है साले ये दिल्ली गेट थाना है!"

और चौथा जब पड़ा, तो मुझे होश नहीं था।

मैं सत्रह दिन बाद लौटा। टूटा-फूटा ब्रोकन। झोंपड़ा खाली पड़ा था। बापू नहीं था। पांच-सात रुपये थे, वे भी तलाशी में निकल गए थे। मेरी

चोत-चोत दर्द कर रही थी···बेहोशी की तरह नींद सता रही थी। मैं लेट कर करवट बदलता कि किसी की आवाज आई, "ये तो यहां पड़ा है! इसका बापू तो इसे खोजते-खोजते मर गया!"

"कहां है बापू ?"

"उधर पड़ा है।"

"मैं तो समझा था, बापू कोकीन खा के कहीं पड़ा है। लेकिन वह तो मरा पड़ा था राजघाट वाली रिंग रोड पर वह किसी ट्रक से टकरा गया था। ट्रक वाला तो भाग गया। बापू पड़ा-पड़ा मर गया। कोई पढ़ा-लिखा होता, तो नंबर नोट करता। बापू की लाश एक मैली धोती से ढकी पड़ी थी।

अब और कोई चारा नहीं था।

मैं बापू की लाश लाद कर दिल्ली गेट चौराहे तक ले गया। उसे वहां कबूतर वाले तिकोने पर लिटा कर मैं कंडोलेंस करते बैठ गया था। उसका मुंह मैंने खुला रहा था। लोग प्रामिज कर सकें कि मेरा बापू सचमुच मर गया है। किरियाकरम के लिए रुपया-दो-रुपया मांगने में शाम तक करके थक गया था।

कबूतर उड़ गए थे, लेकिन कबूतरों के दाने पड़े थे बापू की लाश पर बहुत-से पैसे पड़े थे। मैंने पैसे बीने, काउंट किए, तो दो सौ उन्नीस रुपये थे। दो सौ उन्नीस!

तभी मेरे मन में खोट आई थी दो सौ उन्नीस रुपये! यह कठिन घड़ी थी, करेक्टर का सवाल था। प्रामिज का सवाल था दो सौ उन्नीस रुपये!

अंधेरा हो रहा था।

शंकर-आदी-द्राविड़ की मठिया का पुजारी भी तो चढ़ावे का पैसा ले कर भाग गया था फिर लाश और पत्थर में क्या चेंज है? बापू की लाश भी तो पथरा गई थी।

अब लोगों का आना-जाना कमती हो गया था। सिनेमा वाले लोग डिलाइट में घुस चुके थे। सट्टा बाजार सूना पड़ा था। अंधेरे में एकाध रिक्शा वाले की घंटी सुनाई देती थी। राजघाट तक सन्नाटा था।

मैं बापू की लाश को वहीं छोड़ कर भागा था।

निज़ामुद्दीन से गाड़ी पकड़ कर सीधे आगरा निकल गया था। तब से आठ बरस हुए। दो सौ उन्नीस रुपये से धंधा चल निकला, घर बस गया।

लेकिन इससे पहले मैं आपको बता दूं कि जब दिल्ली दुबारा आके बसा—यह लखनी तो मुझे आगरा में ही मिल गई थी···तभी से वाइफ है; तो पुलिस ने मुझे पहचान के पकड़ा था। लखनी को भी। एक झापड़ मेरे दिया था, "साले जानता है, ये अजमेरी गेट थाना है!"

"जानता हूं सरकार!"

"तब!" थानेदार कड़का था, "अपने बाप को मार के भागा था! वही है न साले···तेरी तो जन्मपत्री यहां रखी है। इसे कहां से भगा के लाया है?"

लखनी थरथरा गई।

"इधर खोखा लगाता है! लोगों का धरम बिगाड़ता है!"

"नहीं सरकार!"

"तब! संभाल के रख अपनी औरत को, नहीं तो कोई भगा ले जाएगा!" इस बार मैं भी ठीक हो गया। लखनी ने मेरी बांह पकड़ ली।

"एक केस में गवाही देगा? पूछ ले अपनी औरत से···"

"कैसा केस सरकार···?"

"यही कि तेरी औरत सो रही थी, तभी बग्गा मोटर वाले ने इसके साथ बदसलूकी और ज़ोर-जबरदस्ती की···"

"लेकिन साब···"

"पूछ ले अपनी औरत से···! डाक्टरी जांच में कोई परेशानी नहीं होगी···कोई साथ चला जायेगा!"

मैंने बिना पूछे ही कहा था, "लेकिन साब···"

"क्यों? रात सोया नहीं था। बाहर जा के पूछ ले इससे, आ के बता!"

थाने के बरामदे में ही पागलों की तरह लखनी ने मुझे पकड़ लिया था। मैं खड़ा था, पर लखनी ने बैठ कर मेरी टांगों में मुंह रख लिया था। वह बुरी तरह सिसक रही थी। मैंने साथ बैठ कर उसे बहुत पेशेंस दिया। ऊंच-नीच हाई ऐंड फाल बताया, पर लखनी कभी मेरे पैरों पर दोनों हाथ

रखती, कभी घुटनों पर। कभी हाथ पकड़ती, कभी बाहें थाम लेती, कभी मेरी खुली शर्ट में मुंह घुसा कर बिखलती…

मैंने बहुत पेशोंस दिया…

उसने लाचार आंखों से मेरी आंखों में देखा…आंख हटा-हटाकर मेरे पूरे फेस, कंधों, बांहों, हाथों, घुटनों और नाखूनों को देखा। पता नहीं, वो मुझमें क्या देख रही थी, तभी उसने एक गहरी गरम सांस ली। मुझे लगा, वो मान गई है।

लेकिन उसकी आंखों ने आखिर में बताया कि वह नहीं मानी है। इतना बहुत था। मेरा हाथ उठ गया और एक जन्नाटेदार थप्पड़ मार कर मैं चीखा, "साली जानती है, मैं कौन हूं?"

लखनी का बॉडी जैसे झुलस गया था। उसके होंठ अंगारों की तरह दहक रहे थे, बुझ रहे थे। वो चीख के बोली थी, "हमें नहीं मालूम, तुम कौन हो। मैं बयान न दूंगी। मैं डाक्टरी नहीं कराऊंगी। मैं मिट्टी का तेल छिड़क के मर जाऊंगी। देख लिया तुम्हें…मेरी इज्जत नहीं है क्या?" कह के लखनी थाने की सीढ़ियों से उतर गई थी।

मैं भीतर पहुंचा। थानेदार ने देखा, "पूछ लिया?"

"वो नहीं मानती सरकार!"

"तब?"

थानेदार कार्बन से लिखे कुछ कागज देख रहा था? उसी पर किसी की एक फोटो नत्थी थी। उसने बिना सिर उठाए जोर से 'हूं' किया और फोटो को उंगली से टेढ़ा करके उस तसवीर का हुलिया पढ़ने लगा—"कद पांच फुट आठ इंच, रंग सदली…"

पढ़ते-पढ़ते बीच मे थानेदार बोला, "बैठ जा, बैठ जा। चाय पी…इसे चाय देना!" चाय लेकर आए अर्दली से थानेदार ने कहा।

मैंने राहत की सांस लेकर प्याला मुंह से लगाया। चाय में मिट्टी के तेल की महक आ रही थी। 

इन्तज़ार

रात अंधेरी थी और डरावनी भी। झाड़ियों में से अंधेरा झर रहा था और पथरीली जमीन में जगह-जगह गड़े हुए पत्थर मेंढकों की तरह बैठे हुए थे। विजिलांते के बूटों की आवाज से दहशत और बढ़ जाती थी। हवा हमेशा की तरह वीतराग थी···लोगों में सनसनी या दहशत दौड़ जाती है पर हवा उसी तरह खामोश आवाज में गाती, सरसराती रहती है। हवा की आवाज़ तभी टूटती है जब विजिलाते टीम के बूट रेत या धूल के कार्पेट पर सप्-सप् करते हैं या मेंढकनुमा बैठे.छोटे-छोटे पत्थरों से टकरा जाते हैं···

पेरीज शहर के फ्रीटाउन इलाके के बाहर तुमाहोल की बस्ती जाग रही थी। लेकिन घरों में रोशनी नहीं थी। विजिलांते के बूट रोशनी से बहुत घबराते हैं···जहां भी कोई रोशनी टिमटिमाती है तो वे उसे बुझाने के लिए, उस पर धावा करने के लिए दौड़ते हैं, लेकिन वे पत्थरों से घबराते हैं···या तो पत्थरों से उनके बूट टकराते हैं या पत्थर आकर उनकी कन-पटी पर पड़ते हैं।

मेंढकों की तरह जमीन पर बैठे हुए यह पत्थर रात में कैसे उड़ने लगते हैं यह रहस्य विजिलांते की गश्ती टुकड़ियों को समझ में नहीं आता था।

इसीलिए गश्त वाले एक सिपाही ने पादरी के सामने कहा था—रात में यह पत्थर उड़ते हैं···होली फादर ! यह दैवी आपदा है···हमें जब फ्री टाउन इलाके के बाहर तुमाहोल की इस बस्ती में भेजा गया तो यह नहीं बताया गया था कि यहां भूत-प्रेत रहते हैं···हमसे कहा गया था—तुमा-होल में निगर्स रहते हैं ··लेकिन यहां तो पत्थर उड़ते हैं···

झोपड़ीनुमा चर्च में जलती मोमबत्तियों की रोशनी में काला पादरी मुस्कराया था—माई सन ! तुमाहोल भूत-प्रेतों की बस्ती नहीं है…शैतान ने कहीं और जन्म लिया है…शैतान को पहचानो…तुम्हें शांति मिलेगी !

सिपाही अपनी सूजी आंख और कनपटी सहला रहा था। उसने अपनी नाक साफ की तो खून के कतरे देखकर वह घबरा गया था।

अस्पताल के डाक्टर ने रिपोर्ट दी थी कि कैडिट थ्री-ज़ीरो-वन दिमागी रूप से कमजोर है। ताज्जुब है कि इस जैसे कायर को विजिलांते में चुना गया। इसके दिमाग में भूत-प्रेत भर गये है और इसे पत्थर उड़ते हुए दिखाई देते हैं…अगर रानी के राज्य और गोरी सभ्यता की हमें रक्षा करनी है तो थ्री-जीरो-वन जैसे कायरों और अंध-विश्वासियों से भी हमें अपनी रक्षा करनी होगी !

चीफ वह रिपोर्ट देखकर भड़क उठा—इज इट ए ब्लडी मेडिकल रिपोर्ट ? डाक्टर तक हमें राजनीतिक रिपोर्ट देने लगे हैं…तुम घायलों की रक्षा करो…गोरी सभ्यता की रक्षा के लिए हम तैनात किये गये हैं !

लेकिन यह तो बहुत बाद की बात है। वह रात तो बहुत अंधेरी थी जिसमें स्तोम्पी सीपी ने तुमाहोल की बस्ती में पहला पत्थर उठाया था। हुआ यह था कि घर पर, दो कमरों की फूस की झोपड़ी को अगर घर कहा जा सके तो उस घर पर सौतेले बाप ने उसकी मां को बहुत मारा था। इल्जाम यह था कि स्तोम्पी सोवेतो में चल रहे विप्लव में शामिल हुआ था। सौतेला बाप उसकी मां को पीटते हुए यही चीख रहा था—आज़ादी और बराबरी मैं भी चाहता हूं…पर उसके लिए यह जरूरी नहीं कि जान खतरे में डाली जाये ! तू कितना ईंधन चूल्हे में डालती है ? बता ! जरूरी है कि सारा ईंधन एक बार ही डाल दिया जाये ? बता ! और तेरा यह स्तोम्पी ! बारह बरस का छोकरा स्तोम्पी—वहां—सोवेतो के विप्लव में शामिल होने गया था…खुद ही नहीं, छोटे भाई को भी साथ ले गया था।

मां सिसक रही थी…बाद में उठकर वह खाना परोसने लगी थी। उसने दोनों बेटों को आवाज लगाई…पर स्तोम्पी का मन उचट चुका था। सिवा कुछ बर्तनों की आवाज के और कोई आवाज उस रात के पहले पहर में नहीं थी।

बस, रात बहुत अंधेरी थी और मां के मार खाने के बाद डरावनी भी हो गई थी। झाड़ियां और झुरमुट सुस्ताते हाथियों की तरह अंधेरे में हांफ रहे थे · कि तभी बाजार के कॉफे से मिरियम मकेबा की आवाज आई थी ···मिरियम मकेबा के गीत के शब्द वीतराग हवा पर तैरते आये थे··· ज्यूकबॉक्स में किसी ने सिक्का डाला होगा ! स्तोम्पी सीपो को मिरियम मकेबा की आवाज और गीत बहुत पसंद हैं। जब भी कोई लड़का सिक्का हाथ में लेकर अपनी पसंद का गीत ढूंढता तो स्तोम्पी सीपो उसे मिरियम मकेबा का गीत सुनने के लिए प्रेरित करता···उसके पास तो पैसे होने का सवाल ही नहीं उठता था। मिरियम मकेबा के गीत पर वह दिल खोलकर नाचता था···कॉफे के लोग भी उसके नाच में रम जाते थे और कभी-कभी खुद उठकर भी नाचने लगते थे।

उस रात कॉफे से गीत की आवाज आई तो स्तोम्पी चुपचाप बाजार की ओर निकल गया। वह गीत उसे खींच रहा था। रास्ते तो उसके लिए जाने-पहचाने थे। और फिर वे इतने ऊबड़-खाबड़ भी नहीं। वह तो तुमा-होल में ही पैदा हुआ था पर दूसरे मोहल्ले में रहता था। जब उसका बाप मरा तो वह पांच साल का था। फिर मां ने दूसरी शादी कर ली तो वह इस मोहल्ले में चला आया।

कॉफे में पहुंचकर स्तोम्पी ने देखा—कोई सात-आठ लोग जमा थे। उनमें से दो को उसने पहचाना। वे सोवेतो के विप्लवी दिनों में उसे दिखाई दिए थे। वह तो यूं ही घूमता-घामता वहां पहुंचा था···उसे पता भी नहीं था कि विप्लव क्या होता है·· लेकिन उसने देखा था···तमाम लोग एक तरफ थे और कुछ लोग दूसरी तरफ। मेन स्ट्रीट पर भीड़ बढ़ती ही जा रही थी। वैसे तो दुकानें बंद थीं पर जो खुली थीं, वे तड़ातड़ बंद होती जा रही थीं ··लोग घरों से निकलकर नदी की तरह मेन स्ट्रीट पर उमड़ रहे थे···और विजिलाते के दस्ते बंदूकें ताने शिकारियों की तरह तैयार खड़े थे, स्तोम्पी की समझ में तब कुछ-कुछ आने लगा था। उसका सौतेला बाप डरी-डरी आवाज में इन्हीं दस्तों की बात किया करता था···मां को मारने के बाद वह खुद रोया करता था और बाद में उसे समझाता था कि डर के कारण उसके भीतर गुस्से का भूत जागता है···

—तुम्हें खदानों से डर लगता है ? मां तब पूछती थी—खदानों के अंदर के अंधेरे से डर लगता है ?

—नहीं···खदान में किस बात का डर ! वहां तो बहुत आराम है, लेकिन धरती पर आते-आते जब बूटों की या गालियों की आवाज सुनाई देती है, तब डर लगता है। सौतेला पिता तब बताता था।

—गालियां कौन देता है ? ठेकेदार ? मां आगे पूछती।

—नहीं···ठेकेदार तो पैसा और शाबाशी देता है···अगर दिन भर में पच्चीस ट्रॉली बजरी हमने काट लीं तो वह साथ बैठकर कॉफी भी पिलाता है···गालियां तो विजिलाते के सिपाही देते हैं ! पिता बताता था।

—लेकिन तुम्हारा ठेकेदार तो गोरा है !

—तो उससे क्या हुआ। हर गोरा तो कामचोर या बदमाश नहीं होता ''हमारा ठेकेदार हमसे काम लेना और हमें खुश रखना जानता है।

—तो सिपाही गालियां क्यों देते हैं ?

—उन्हें शक है कि हमारी खदानों में विद्रोही शरण पाते हैं···वे विजिलांते से बचने के लिए खदानों में छुप जाते हैं और हम मजदूर लोग उन्हें पनाह देते हैं !

—लेकिन तुम्हारे पास तो मजदूर होने के परिचय-पत्र रहते हैं। क्या वे सिपाही तुम्हें नहीं पहचानते ?

—हमें सिर्फ नम्बर से पहचाना जाता है···अगर नम्बर एकदम न बोला, या याद करने में देर लगी तो च्यूइंगम खाते विजिलांते का बूट हमारे···

—धीरे बोलो···जगह बताने की क्या जरूरत है कि बूट कहां पड़ता है···कुछ तो लिहाज करो···बच्चे जाग रहे हैं !

—क्या बोली ! पिता गुर्राया था।

—कहा न धीरे बोलो !

—हरामजादी ! यहां भी धीरे बोलने को कहती है। तेरे एक लात लगाऊं वहां पर···वहीं पर···जहां ''जहां मेरे पड़ी थी !

और पिता ने दो-तीन लातें मां के मार दी थीं···मां एकदम चीखकर कराहने लगी थी···और फिर पिता बिलख-बिलखकर रोने लगा था···मां को संभालने लगा था···फिर मां ने खाना परोसा था। रेती के केकड़ों का

शोरबा और जौ की रोटी, जो वह तीन दिन पहले नानबाई की दूकान से लाई थी।

रेती के केकड़े पकड़ने में स्तोम्पी माहिर था। अगर हवा न चल रही हो तो रेती पर उनके चलने के निशान कुछ देर बने रहते हैं। और फिर वे छेद तो दिखाई ही पड़ जाते हैं जिनमे वे टेढे होकर घुस जाते हैं···वे सागर के केकडो की तरह काले नही होते, वे रेत की तरह ही शर्बती होते हैं···कभी-कभी तो किसी छेद को खोदने से केकड़ों की पूरी बस्ती ही मिल जाती है···भयातुर केकड़े तब भागते हैं···कुछ रह जाते हैं, कुछ रेत में रास्ते बनाकर भीतर छुप जाते हैं।

उस रात खाने के बाद पिता ने मां को सीधा लिटा लिया था और उसकी दोनों टांगो को फैलाकर वह उस जगह को सेंकता रहा था––जहां उसने मां को मारा था। और खुद भी अपनी उस जगह को सेंकता रहा था जहां उसे विजिलाते ने मारा था।

सेंकने के लिए पिता ने लैम्प की लौ बहुत ऊंची कर ली थी, इसी से लैम्प का शीशा चटक गया था तो मां ने उसे कोसा था––दर्द तो ठीक हो जाएगा लेकिन यह शीशा कहां से आएगा?

लम्बी लौ के कारण शीशा तो उनके शरीर की तरह काला पड़ गया था, लेकिन उसकी चटकन ब्लेड की धार की तरह चमकने लगी थी।

सुबह अपने पिता को बिना बताए स्तोम्पी खदानों के इलाके में गया था···यूं ही घूमता हुआ, पास जाने की हिम्मत तो नही थी···खदानो के अलग-अलग इलाके चहारदीवारियो या कंटीले तारों से घिरे हुए थे···गेट पर नये मजदूर भर्ती के लिए खड़े थे···अपने-अपने सिटिज़न पास लिए हुए। संतरी उनको रोके हुए थे।

स्तोम्पी पास तक तो नही जा सका इसलिए वह एक टीले पर चढ़कर देखता रहा था···खदानों के मुहाने छोटे-छोटे छेदों की तरह दिखाई दे रहे थे और उनमें उतरने वाले मजदूर केकड़ों की तरह ही गायब होते जा रहे थे। कटी हुई बजरी लेकर आने वाली ट्रालियां तो बहुत बाद मे ऊपर आती हैं। मजदूर तो केकड़ों की तरह नीचे ही छिपे रहते हैं।

लेकिन उस दिन स्तोम्पी ने मेन स्ट्रीट मे लोगो को धरती के ऊपर

देखा था। तब वह कुछ-कुछ समझ सका था और तभी अपने सौतेले पिता के प्रति उसके मन मे कुछ अपनापन-सा उभरा था···

और तब स्तोम्पी ने विजिलाते के शिकारी सिपाहियों को आंख उठाकर देखा था···और दौड़कर भीड के आगे खड़ा हो गया था। उसे देखकर तमाशबीन बच्चे भी धीरे-धीरे भीड़ के आगे आ गए थे और उमड़ती नदी की पहली लहर की तरह विजिलाते के दस्तों के सामने खड़े हो गए थे।

विप्लवी आदोलन के नेता ने चीखकर कहा था—बच्चों को पीछे हटाओ! यह कहां से आ गए?

तो उसी के बुजुर्ग साथी ने कहा था—नही! ये दस-दस बारह-बारह बरस के बच्चे हमसे ज्यादा साहसी हैं। इनके पास केवल भविष्य है··· इन्हें सिर्फ पाना है, कुछ खोना नही! हमारा वर्तमान हमे कायर बना सकता है···इन्हें नही···इनके पास केवल भविष्य है!

और उसके बाद क्या हुआ यह तो स्तोम्पी को भी नही मालूम···उसे तो होश तब आया जब उसने अपने को डिटेंशन लॉकअप में पाया। मार-काट के बाद उसकी मरहमपट्टी कर दी गई थी लेकिन उसके शरीर में जगह-जगह दर्द था। तब उसे,घर का लैम्प बहुत याद आया था और सपने में उसने देखा था—उसका सौतेला पिता उसे जगह-जगह उसी तरह सेंक रहा था जैसे उसने मां को सेंका था। आंख खुली तो देखा—डिटेंशन वार्ड मे अंधेरा था। वहां कोई लैम्प नही था, और न कोई लौ···

दो महीने बाद स्तोम्पी को दो झापड मारकर छोड़ा गया। डिटेंशन कैम्प का जेलर राउंड पर आया तो स्तोम्पी और दूसरे सात बच्चों को देख कर चीखा था—अबे गधो! नाबालिगों को बन्द करके रखा है। ब्रिटिश कानून ग्रेट-ब्रिटेन में चाहे नेस्तनाबूद हो चुका हो लेकिन प्रीटोरिया की सरकार मानव अधिकारों और आधारभूत कानूनों की अभी भी रक्षा करती है···नाबालिगों को हम अदालत की आज्ञा बिना डिटेंशन में नही रख सकते! इन्हें इसी वक्त रिहा करो···नही तो मानव-अधिकारों के हनन का कलंक हम पर लग जाएगा। इन्हें छोड़ो···आजाद करो···सफर के पैसे देकर इन्हें घर भेजो···अभी···फौरन···

और तब स्तोम्पी छोड़ा गया था। वह नहीं जानता था कि अब क्या करे? घर जाए या यहीं रुक जाए? उसे अंदाज था कि छोटे भाई ने घर लौटकर बता दिया होगा कि वह कहां है···

और यह बात दोनों को पता हो गई थी—मां को भी और सौतेले पिता को भी, लेकिन दोनों एक-दूसरे से इस बात को छुपाते रहे थे—और स्तोम्पी के इस तरह गायब होने को उसके आवारा हो जाने का नाम देते रहे थे और यही उन्होंने विजिलांते के दस्ते से भी कहा था, जो स्तोम्पी को पूछते हुए आया था।

—जी! उसका नाम स्तोम्पी सीपी है···उम्र बारह साल। वो मेरा सौतेला बेटा और मेरी पत्नी का बेटा है···वह शुरू से ही आवारा रहा है···घर से चीजें चुराकर भागता रहा है···जब भूखा मरने लगता है तो लौट आता है। इस वक्त हमें उसके बारे में कुछ भी पता नहीं कि वो कहां है! लौटकर अगर आया तो हम आपके पास रिपोर्ट करेंगे। उसे आपके सामने हाजिर करेंगे। उसने हमें बहुत परेशान कर रखा है···और साब! हम तो वैसे ही बहुत परेशान लोग हैं···

विजिलांते बहुत संतुष्ट होकर लौट गए—ही नोज हिज पास्ट। प्रेजेंट एण्ड फ्यूचर। हमने इन निगर्स को सभ्य बनाया, रोजगार दिया और चर्च दिया। इन्हें इनका ईश्वर दिया।

और स्तोम्पी जब तुमाहोल में लौटकर आया तो वह पहले सीधे चर्च गया। काले पादरी ने उसे पहचाना और उसके सर पर हाथ फेरते हुए कहा—माई सन! जो मन और तन से आजाद नहीं है वो किसी भी धर्म का बंदा नहीं है।

काले पादरी की बात स्तोम्पी समझ ही नहीं पाया। उसने उसी तरह आंखें फाड़कर काले पादरी को देखा जैसे उसने मेन-स्ट्रीट में विजिलांते के दस्तों को देखा था।

वह झोपड़ीनुमा चर्च से बाहर निकल आया था···;मोमबत्तियों की रोशनी में काला पादरी बहुत संतुष्ट-सा मुस्करा रहा था।

दूर कॉफे से तभी मिरियम मकेबा की पुकारती आवाज आई थी और

स्तोम्पी उस तरफ खिंचा चला गया था। ज्यूकबॉक्स में किसी ने सिक्का डाला था और मिरियम मकेबा की आवाज एकदम फूट पड़ी थी—

—आओ प्यार करो
तन के क्षणिक अनुराग से नहीं…
वह भी जरूरी है…
लेकिन पहले धरती से प्यार करो…
इसके जंगलों, कछारों और हवा से प्यार करो…
जब तक जंगल, पहाड़ और हवा आजाद नहीं हैं…
तब तक तुम्हारा तन भी आजाद नहीं है
नश्वर तन को आजाद करो…
आओ प्यार करो!…आओ प्यार करो!

शब्द और अर्थ स्तोम्पी की समझ में नहीं आते थे पर मिरियम मकेबा की आवाज के अर्थों में एक कशिश थी…वह पुकारती आवाज उसे खींचती थी…

मिरियम मकेबा की आवाज के बीच उसे विजिलांते के दस्ते और काले पादरी के राहत देते वचन एक से लगते थे। काले पादरी के वे वचन आजादी का आसरा देते हुए सहने और सहते जाने की सीख देते थे।

लेकिन यह उसके सौतेला पिता ने नहीं किया। उसने स्तोम्पी को बांहों में लेते हुए इतना ही कहा—स्तोम्पी बेटे! मैं वही चाहता हूं जो तुम चाहते हो…लेकिन मैं तुम्हें खोना नहीं चाहता! तुम्हारी मा भी तुम्हें खोना नहीं चाहती… जिस दिन तुम खो जाओगे…हम दोनों अजनबी हो जाएंगे! हम तुम्हारा खो जाना…तुम्हारा समाप्त हो जाना बर्दाश्त नहीं कर पाएंगे! तुम बच्चों की विप्लवी सेना में सबसे आगे हो…लेकिन…

इस लेकिन का उत्तर किसी के पास नहीं था। स्तोम्पी ने अपने सौतेले पिता से पूछा—लेकिन?

—लेकिन…यही कि तुम विप्लव…इस क्रांति के पीछे रहो! तुम अभी बारह साल के हो…बहुत बड़ी उम्र है तुम्हारे पास।

—वे मुझे इसी उम्र पर रोके रखना चाहते हैं। वे मुझे इस उम्र से आगे बढ़ने नहीं देंगे।

—स्तोम्पी ! तुम अपनी उम्र से ज्यादा बड़ी बात कर रहे हो। पिता चीखा था।

—*अत्याचार और अन्याय सहने वालों की उम्र हमेशा बराबर होती है।* स्तोम्पी ने बुजुर्गों की तरह चीखकर कहा था—मैं ज्यादा नहीं जानता, पर जब आप मां को मारते हैं तो मैं जानता हूं वह मार कहां से आती है···

और यही वह रात थी जो अंधेरी और डरावनी थी जब विजिलाते टीम के बूट रेत या धूल के कार्पेट पर सप्-सप् कर रहे थे और कभी-कभी मेढकनुमा बैठे हुए छोटे-छोटे पत्थरों से टकरा जाते थे।

मेढकों की तरह जमीन पर बैठे हुए यह पत्थर रात में कैसे उड़ने लगे थे, यह रहस्य विजिलाते के गश्ती दस्तों की समझ में नहीं आया था।

स्तोम्पी तो तब मिरियम मकेबा का गीत सुन रहा था···तभी एक आदमी दौड़ता आया था और उसने कॉफे के मालिक से हांफते हुए कहा था—बत्ती बुझा दो···वे आ रहे हैं! कॉफे की बत्ती फौरन गुल हो गई थी और उस अंधेरे में कुछ लोग इधर-उधर निकल गए थे। ज्यूक बॉक्स से थोड़ी-सी हल्की रोशनी आ रही थी। आखिर वह रोशनी भी बंद कर दी गई और गीत की आवाज भी एकाएक बीच में टूट गई।

स्तोम्पी की समझ में कुछ नहीं आया कि वह क्या करे। अंधेरे में पड़ी एक बेंच पर वह बैठ गया था। तभी विजिलाते का एक दस्ता आया था···

उनके हाथों में खदानों की टार्चें थीं और वे कॉफे में लोगों को ऐसे तलाश रहे थे जैसे खदान में केकड़ों को तलाश रहे हों। अपनी जल्दबाजी में उन्होंने बाहर बैठे स्तोम्पी को नहीं देखा था। लेकिन कॉफे का मालिक उन्हें मिल गया था। यही बहुत था। उन्होंने कॉफे के मालिक को बुरी तरह पीटा था···बिजली के तार काट दिए थे, सारे बर्तन फोड़ दिए थे और ज्यूक बॉक्स तोड़ दिया था।

जब वे लौट रहे थे तो एक उड़ता हुआ पत्थर आया था···फिर बहुत से पत्थर उड़ते हुए आए थे और कैंडिट थ्री-जीरो-वन की कनपटी से खून बहने लगा था। आंख सूज गई थी।

उनके पास जानकारियां थीं···कैंडिट थ्री-जीरो-वन को चौकी पर जमा करके वे स्तोम्पी के घर पहुंचे थे। उन्होंने बूटों से दस्तक देकर उसके

पिता और मां को जगाया था। छोटा भाई अंधेरे में दुबक गया था। एक ने आगे बढ़कर कहा था—

—स्तोम्पी को बाहर निकालो!

खदान की टार्च हाथ में देखकर उसका पिता तो पहले यही समझा था कि ठेकेदार आया है···लेकिन इस वक्त तो वह कभी नहीं आता। पिता सब समझ गया था।

—स्तोम्पी तो घर में नहीं है! वह खाने के वक्त भी नहीं था। पता नहीं कब कहां भाग जाता है···एकदम आवारा हो गया है।

—वो आवारा ही नहीं खतरनाक हो गया है···उसने डेढ़ हजार बच्चों को पत्थर मारना सिखाया है। विजिलाते का मुखिया चीखा था।

—यह तो वह बचपन से करता था। पीछे खड़ी मां ने दबी आवाज़ में कहा था—बचपन में वह मेढकों को पत्थर मारा करता था···तब भी वो बहुत शैतान था···

—अब वो पूरा शैतान हो गया है···डेविल! वो जब भी घर आए, हमारे हवाले कर दिया जाए। तुम रोज़ चौकी पर आकर हाज़िरी दिया करो···शाम होते ही!

आदेश देकर विजिलाते लौट गए थे।

लेकिन उस दिन से स्तोम्पी घर नहीं लौटा। मां कभी-कभी रोती थी —उसे मां की याद भी नहीं आती···सौतेला पिता भी पछताता था—वो कभी छुपकर मुझसे मिलने ही चला आता···

लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। वही हुआ जो ऐसे में होता है। वह रात भी अंधेरी थी। विजिलाते के बूटों की आवाज़ से दहशत और बढ़ गई थी ···फिर चर्च की झोपड़ी के पीछे गोलियां चली थीं। काला पादरी घबराकर बाहर आया था। तुमाहोल की बस्ती को सांप सूंघ गया था।

बुरी तरह से घायल स्तोम्पी खून की मटमैली चादर पर तड़प रहा था।

डर से थरथर कांपती, चर्च की बुढ़िया टीचर एक मोमबत्ती थामे पास आई थी और उसे देखते ही डरी आवाज़ में चीख पड़ी थी—यह तो स्तोम्पी है! इस बच्चे को उन्होंने क्यों मार डाला!

पादरी के चेहरे पर पूजा की उदासी थी।

बुढ़िया टीचर ने तब उसके पास बैठते हुए पादरी से कहा था—स्तोम्पी के घर वालों को खबर कर दो ''यह सिर्फ पांच-सात मिनट का मेहमान है'''

—नहीं! किसी को खबर मत करो'''कराहते हुए स्तोम्पी बोला था। तब तक पादरी पवित्र जल ले आया था।

—खबर करना तो जरूरी है'''पादरी बोला था।

—नहीं! टूटती आवाज में स्तोम्पी ने कहा था—मेरी मां सुनेगी तो रोएगी'''उसे मत बताना कि मैं मारा गया हूं। उससे यही कहना कि मैं''' मैं डिटेंशन मे हूं'''मुझे विजिलांते ने पकड़ लिया है'''

—माई सन'''पादरी की आंखों में आंसू थे।

—मुझे चुपचाप यहीं कहीं दफना देना'''मगर मेरी मां'''मेरे पिता को मत बताना'''उन्हें यही बताना—मैं डिटेंशन में हूं'''तब वे रोएंगे नहीं, मेरा इन्तजार करेंगे'''

—यस माई सन! जीसस क्राइस्ट ने भी यही कहा है—मैं मनुष्य का शरीर धारण करके फिर धरती पर आऊंगा ''मेरा इन्तजार करना'''

—मुझे जीसस क्राइस्ट का इन्तजार नहीं है फादर'''कहते-कहते स्तोम्पी की आंखें पथरा गई थीं।

बुढ़िया टीचर ने मोमबत्ती की कांपती लौ में और पास जाकर देखा'''और वह कसमसा कर वहीं बैठ गई।

काले पादरी ने अंधेरे मे ही क्रास बनाया।

रक्त की चादर पर स्तोम्पी पड़ा था।

उसकी पलकें बंद करने से पहले पादरी ने एक बार उसकी आंखों मे देखा'''तो बुढ़िया टीचर ने मोमबत्ती और पास कर दी। फिर उसने धीरे से बुदबुदा कर पूछा—इसे किसका इन्तजार था?

—पता नहीं!



शोक-समारोह

उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि शोक का कितना अनुपात उसके चेहरे पर रहे जो मृतक के लिए भी ठीक रहे और उसके अपने व्यक्तित्व के लिए भी। गाड़ी पार्क करते-करते वह यही सोच रहा था, तब तक ट्रैफिक पुलिस-मैन ने उसे वहां गाड़ी पार्क न करने का इशारा करते हुए दूसरी जगह बताई। उसने गाड़ी हटा ली। उसे ट्रैफिक वाले का होना कुछ अजीब सा लगा, क्योंकि ऐसी कालोनियों की बारह-चौदह फुट चौड़ी सड़कों पर ट्रैफिक वाले नही होते। लेकिन ऐसे मौके पर उसका होना ठीक ही था। वैसे कारें ज्यादा नही थी, लेकिन हो सकती थी।

रिश्ते मे मृतक उसका साढ़ू लगता था, पर साढ़ू होने से ज्यादा वह मित्र था। एक जमाने में दोनो एक ही मिनिस्ट्री में साथ थे—और वह जमाना उन रोटियों वाला था जो दोनों कागज में लपेट कर घर से लाया करते थे और लंच टाइम में रेढ़ी से छोले खरीद कर साथ-साथ खाया करते थे। फिर उसका प्रमोशन हो गया और वह मिनिस्टर साहब के निजी स्टाफ में पहुंच गया। तब वो बच्चों के स्कूली डिब्बे में रोटियों के साथ-साथ कुछ सब्जी और अचार भी लाता था। रेढ़ी पर खाने और खुद पत्ता उठा कर फेंकने के दिन लद गये थे। अब वो दिन थे जब वो मिनिस्टर या सेक्रेटरी के कमरे से हाथ में नोटबुक लिये निकलता था और आई० ए० एस० अफसरों की तरह ठीक वक्त पर लंच लेता था। छोटे छेद से वह झांक लेता था कि साहब ने लंच शुरू किया या नहीं और उसी के मुताबिक वो चपरासी को आवाज लगाता था—

—राम जी! लंच…

रामजी अखबार उठाता था। बिछाता था। उड़ते कोने में से एक पर

पेपरवेट और दूसरे पर गिलास रखता था। फिर बीच में खाने का स्कूली डिब्बा रख देता था। छोटा तौलिया तो कुर्सी की पीठ पर लगा ही रहता था। इस बीच रामजी बड़ी चौकसी बरतता था···बीड़ी पीते हुए वह इस बात का खयाल रखता था कि बत्रा साहब को कोई परेशान न करे। आने वाले लोगों के नाम की स्लिपें या विजिटिंग कार्ड वह दरवाजे पर ही जमा कर लेता था—लंच ले रहे हैं···आप उधर बैठिए।

उसके बाद बत्रा का ओहदा और मर्तबा इतना बढ़ा कि उसका लंच मिल्टन के गर्म डिब्बे में स्टाफ कार से आने लगा, जिसे कमरे तक ड्राइवर पहुंचाता था। फिर राम जी अंदर ले जाकर रखता था। प्लेटें और चम्मच धोकर रखता था और बाहर बैठ कर सिगरेट पीया करता था। राम जी के बीड़ी वाले दिन भी लद गये थे।

फिर वो दिन भी हवा हो गये और बत्रा का पैक्ड लंच गेलार्ड या वोल्गा से आने लगा क्योंकि उससे लंच का कोई बंधा हुआ समय ही नहीं रह गया था। वो सेक्रेटरी साहब को लांघकर मिनिस्टर साहब का विश्वसनीय आदमी बन चुका था और मैडम उसे बंगले पर बुलाती ही रहती थीं।

बत्रा की तेज तरक्की तब हुई जब डाक्टर ने मिनिस्टर साहब को दो हफ्ते का कम्प्लीट रेस्ट बताया। बत्रा ने हाथो हाथ हिल-स्टेशन पर सारा इन्तजाम किया। जिम्मेवारियां इतनी थी कि सारे इंतजाम के बावजूद तय तारीख को मिनिस्टर साहब नही आ पाये और बत्रा को ही मैडम और फैमिली के साथ जाना पड़ा···मिनिस्टर साहब बाद मे आने वाले थे।

हिल-स्टेशन पर कोई क्या करे? पहाड़ों को कितना देखें। वह तो अच्छा हुआ कि कुछ नये-नये उद्योगपति उम्मीदवार भी इत्तफाक से उसी हिल-स्टेशन पर आ गये थे। दोपहर को बत्रा और क्या करता—उनके साथ क्लब में बैठकर बीयर पीता और ताश खेलता। हालांकि उसने ताश खेलना नया-नया ही सीखा था, पर किस्मत लगातार साथ देती रही—बत्रा हर दिन पांच-सात हजार जीत ही जाता···

फिर शाम को मैडम की शॉपिंग! वैसे आते रहेंगे मैडम···आपको जो पसन्द आता है, आप चुन लीजिए।···हम पैक करके आपके होटल में

पहुंचा देंगे···खरीददारी में बन्ना मैडम की मदद करता। दुकानदार बढ़ावा देते। फिर कहीं बाहर खाना खाकर मैडम लौटती या होटल में ही खाती··· बन्ना भी साथ ही खाता, मगर डायनिंग टेबिल पर तीन-चार कुर्सियां दूर बैठता।

रात उतर आती थी।

रात भर चीड़ सरसराते और बातें करते रहते थे।

मिनिस्टर साहब आये और एक रात आराम करके लौट गये। उन्हें वक्त ही नहीं मिलता। मिनिस्टर साहब जितने व्यस्त होते जाते थे, बन्ना की जिम्मेदारियां उतनी ही बढ़ती जाती थीं। फिर मिनिस्ट्री में एक धमाका हुआ—बन्ना मिनिस्टर साहब का एडीशनल प्राइवेट सेक्रेटरी बन गया। यह पॉलिटिकल एपाइंटमेंट था और लोग देखते ही रह गये। फिर बन्ना ने बहुत लग कर काम किया···अपनी कोठी बनवाई, कार खरीदी···और इससे पहले कि उस पर सी० बी० आई० का साया पड़ता, बन्ना इस्तीफा देकर अलग हो गया।

हार्न की एक हल्की आवाज ने उसके खयालों का सिलसिला तोड़ दिया। मातमपुर्सी के लिए आई कारों की भी अपनी संस्कृति होती है। उसने सामने देखा—वह बन्ना की कोठी के गेट पर खड़ा था—सामने पीतल के बड़े चमकदार अक्षरों में लिखा था—बन्नाज।

बहुत से नौकर-चाकर घूम रहे थे। एक नौकर शर्बत की ट्रे लिए नि:संग भाव से शोकग्रस्त लोगों तक जाता और फिर आगे या पीछे चल देता।

उसने आने वाले लोगों की चाल को देखा और अपनी चाल की रफ्तार तय की। घर गन्ने के खेत की तरह भरा हुआ था और उतना ही खामोश था। अपने भीतर दुःख और संताप पैदा करने की उसने कोशिश की और खड़े हुए लोगों को दबी निगाह से उसने देखा। वे भी अधखुली उदास खिड़की की तरह उसे देख रहे थे। उनके चेहरे उसने कुछ और मुर्झाते हुए देखे तो वह निश्चित हो गया कि उसके अपने चेहरे पर आये संताप के भाव ठीक अनुपात में हैं।

तभी बन्ना के बड़े लड़के ने अपने नंगे बदन पर जनेऊ ठीक करते हुए

उसे रिसीव किया—आइए मौसा जी···मम्मी मौजी जी आये हैं। सुनकर मम्मी ने चाय का प्याला वहीं मेज पर छोड़ दिया और वे अपने दुख में शामिल होने आये जीजा जी को रिसीव करने के लिए अपनी एकांत कुर्सी पर बैठ गई···उसने अफसोस जाहिर किया तो बत्रा की बीवी ने उसांस लेकर कहा—मैं तो लुट गई जीजा जी···

तभी बाहर से सरसराहट का एक झोंका आया। फुसफुसाहट हुई कि मिनिस्टर साहब आये हैं, लेकिन मिनिस्टर साहब नही, उनका संवेदना तार आया था। छोटे बेटे ने अन्य तारो की गड्डी के साथ मिनिस्टर साहब का तार अपनी मां के हाथ में थमा दिया।

—अब देखना क्या है···पोस्टमैन को कुछ दे दो···बेचारा सुबह से चालीस चक्कर तो लगा चुका है। बत्रा की बीवी ने छोटे बेटे से कहा, फिर उसकी तरफ मुखातिब हुई—तार पर तार···मैं तो देखते-देखते थक गई जीजा जी···और तभी पास से गुजरती पोती से उसने पूछा—पिंकी, तार गिने तूने···

—हां दादी जी···वन थाउजेंड् फोर्टी एट···ये मिला कर तो इलेवन हंड्रेड हो जायेंगे। पिंकी ने तारो की गड्डी हाथ मे लेते हुए कहा।

—डेथ वाले दिन के तारों से अलमारी भरी पडी है। बत्रा के बड़े दामाद ने कहा—मैं तो पूरे दिन तार ही रिसीव करता रहा।

तभी दावत के लिए तैयार होती, कचौड़ियों को चखाने के लिए हलवाई आ गया—मेम साब···देख लीजिए, मसाला तो ठीक है।

बत्रा की बीवी ने एक टुकड़ा तोड कर चखा—थोडी हींग कम है। और वे अपनी घी लगी उंगलियों को साफ करने की सोच ही रही थी कि तब तक दामाद ने रूमाल बढ़ा दिया।

—बच्चे नही दिखाई दे रहे! उसने कुछ बात करने के लिए बात की।

—उन्हें हमने अप्पू घर देखने भेज दिया···थोड़ा एन्ज्वाय करेंगे··· दामाद ने बताया।

—सात गाड़ियां भर कर गई हैं।

—नही, एक मेटाडोर और पाच गाड़िया!···

—बच्चों के साथ आइसबाक्स में ब्रिक्स रखवा दी थी ? बन्ना की बीवी ने जानना चाहा।

—ब्रिक्स ?

—आइसक्रीम ब्रिक्स।

—बच्चों का पैक्ड लंच निरुलाज़ से पहुंच जायेगा।

तब तक हलवाई चटनी चखाने के लिए आ गया। पीछे हलवाई का असिस्टेंट मोतीचूर का लड्डू दिखाने और चखाने के लिए तैयार खड़ा था। बन्ना की बीवी कचौड़ी के साथ चटनी चख ही रही थी कि फिर सनसनी फैल गई। कनाडा वाले मामा जी आ पहुंचे थे।···

—भैया का सामान ऊपर वाले कमरे में जायेगा। देख लेना एयर-कंडीशनर ठीक है या नहीं···बन्ना की बीवी अभी यह कह ही रही थी कि कनाडा वाले भाई ने उसे कंधों से संभालते हुए कहा—तुम्हारी कोठी पर तो ट्रैफिक जैम है दीपा···अनबिलीवेबिल···इण्डिया में कोई सिस्टम ही नहीं है ! ···अरे हां, इससे पहले कि भूल जाऊं···अरे कहां हो चंद्रिका और विनीता !

मामा जी के पुकारते ही दोनों बहुएं आ गईं··पर उस पल उनके साले साहब उनसे मुखातिब थे—एण्ड हाऊ आर यू बड़े जीजा जी ?

मुझे तो इन लोगों ने फोन पर खबर दी···इट वाज़ शॉकिंग···मैं चाहता तब भी क्रीमेशन पर तो पहुंच नहीं पाता।···ऊपर से इन सबने अपनी-अपनी फर्माइशों की लिस्ट लिखवानी शुरू कर दी···इट वाज़ फुल ट्वेंटी सेविन मिनिट्स ऑन फोन···येस।

—एक बार तो फोन बीच में कट गया था। बहू विनीता ने चमकती आंखों से खबर दी, तो मामा जी ने दोनों बहुओं की ओर मुड़ते हुए कहा—तुम्हारी शॉपिंग करने में पूरे चार दिन लगे—येस, फुल फोर डेज़ ! बड़ा वाला सूटकेस तुम लोगों का है···सारे कास्मेटिक्स और बाकी सब चीजें हैं !

तभी नौकर बिंदा ने आकर खबर दी—मेम साब···बहुत भिखारी जमा हो गये हैं। बढ़ते ही जा रहे हैं···खाना दे दूं ?

—दीज़ रास्कल्स ! मामा जी ने भड़क कर कहा—इण्डियन बेगर्स···

इन रास्कल्स को मौत पर खाना भी चाहिए।

—*लोग जाना भी चाहते हैं ममी, ऊपर खाना लग गया है*··· मामा जी, आप भी थोड़ा खा लीजिए। बड़े बेटे ने आकर कहा।

—मामा जी की प्लेट मैं यहीं लगा लाती हूं···अम्मा जी ने बारह दिनों से तो कुछ खाया नहीं ···मामा जी के साथ ये दो कौर खा लेंगी। बड़ी बहू चन्द्रिका ने कहा और वह प्लेट लगाने चली गई···

—आइए मौसा जी···आप आइए। बन्ना के बड़े बेटे ने कहा तो वह ऊपर खाने चला गया।

हॉल में मेज़ों पर खाना लगा था। भीड़ बहुत थी। खाना भी गरमा-गरम था और लोग दिल से प्लेटों में खाना ले रहे थे। पता नहीं नौकर बिंदा को भिखारियों की ही फ़िकर थी—उसने बन्ना के बड़े बेटे के पास आकर अदब से पूछा —भैया साब···भिखारी खाना मांग रहे हैं···दे दूं?

—अभी जल्दी क्या है। ये जूठन बचेगी, कौन खायेगा? बन्ना के बड़े बेटे ने बिंदा को झिड़क दिया।

उसने भी जैसे-तैसे अपनी प्लेट लगाने की कोशिश की···लोग प्लेटें लगा कर खा भी रहे थे, पर वहीं मेज़ के पास ही खड़े थे···उन्हें दूसरों का खयाल ही नहीं था ··गरम कचौड़ियां आतीं तो इससे पहले कि वह एक कड़क तली कचौड़ी उठाये, उसे कोई-न-कोई और उठा लेता · पनीर का टुकड़ा वह प्लेट पर परोसे कि उससे पहले कटेनर में सिर्फ़ पनीर का शोरबा रह जाता, वह सलाद की प्लेट से नीबू का टुकड़ा उठाये-उठाये कि तब तक सब टुकड़े उठ जाते···रायते का ज़ीरा-मिर्च पड़ा टुकड़ा छुए कि रायते की मसालेदार पर्त ख़त्म हो जाती। आख़िर में पापड़ के कुछ टूटे हुए टुकड़े बचे थे जो उसने उठा कर इस तरह खाने शुरू किये कि वह एक बहुत ही सोफ़ियाना आदमी लगने लगा था—उस तरह का सोफ़ियाना आदमी —जो बहुत कम खाते हैं और बड़े आदमियों की तरह बहुत सलीके से खाते हैं। सब लोग अपनी तरह से खाते और खाना उठाते जा रहे थे और उसे यह पता नहीं चल रहा था कि कौन किसके हिस्से की कचौड़ी, पनीर या रायता खा रहा था। कुछ लोग थे, जो सचमुच खा रहे थे और कुछ लोग थे जो सचमुच नहीं खा पा रहे थे।

आखिर उसने पापड़ इस शालीनता से खाये कि जैसे उसने पेट भर खाना खाया हो। फिर उसने पानी पिया और चलने के लिए नीचे उतर आया।···

नीचे बत्रा की बीवी दीपा कनाडा से आये अपने उन्ही भाई, यानी उसके साले को सब दिखा रही थीं। और बता रही थी—पुलिस कमिश्नर आये, आई० जी०, डी० आई० जी०···पूरा घर पुलिसवालों से भर गया था···लगता था जैसे रेड पड़ी हो···सैकड़ों तो इंडस्ट्रियलिस्ट थे···सब इनके पुराने दोस्त थे ··प्राइम मिनिस्टर फॉरेन में थे, नही तो उनका कंडोलेंस मैसिज जरूर आता। पता लगा था, वो टाइप किया रखा है··· पर प्राइम मिनिस्टर तो हैं नहीं, दस्तखत कैसे हों! और ये देखिए भैया! मालाओं के पहाड़···अब तो फूल सूख गये हैं···एक ट्रक फूल-मालाएं तो चुंगी वाले भर कर उठा ले गये ··ये पहाड़ फिर भी यहीं पड़ा है।

—ताजे फूल तो मास्टर्स ने जाके बेच लिये होंगे···अब सूखे फूलों को उठाने क्यों आएंगे! कनाडा वाले मामा ने कहा।

लॉन के कोने में पड़े फूलों के पहाड़ को दूर से देख कर वे भीतर मुड़ गये—बत्रा का बड़ा बेटा तीन थैलों में भरे तार उन्हें दिखाने लगा। तब तक बड़ी बहू चन्द्रिका ने एक बड़ा बैग और लाकर रख दिया।

—हमारी तो सारी अलमारियां तारों से भर गई थीं मामा जी! बड़ी बहू ने थैला दिखाते हुए कहा तो कनाडा वाले मामा ताज्जुब से भर गये, एकदम बोले—वाऊ। इतने कागज़ से तो क्रीमेशन किया जा सकता था··· लकड़ी की ज़रूरत ही नहीं पड़ती।···और अपनी ही बात पर उन्होंने ठहाका लगाया।

सब धीमे-धीमे मुस्कराने लगे। उनके चेहरों से शोक की रेखायें लगभग पिघल गईं। इस क्षण उसे लगा कि उसका चेहरा शायद इन लोगों के मुकाबले ज्यादा शोक-संतप्त लग रहा है···जिसे शायद दिखावा माना जायेगा। उसने शोक के अनुपात को कुछ कम किया तो चेहरे के तनाव में कुछ कमी आई।

—ट्रैफिक जैम तो उस रोज़ हुआ था। आप देखते ··तब अंदाजा लगता।

—चीफ जस्टिस का रीथ आधे घंटे क्यू में रुका रहा।

—चीफ जस्टिस आये थे। कनाडा वाले मामा ने पूछा।

—वो'''वो'''तो हार्ट पेशेंट है'' आ रहे थे'''हमने ही उन्हें रोका''' बड़े बेटे ने बात साफ कर दी।

—तेरह दिन से फोन लगातार बज रहा है।

अब तक इन जानकारियों में दिलचस्पी रखने वाले कुछ और मातमी भी शामिल हो गये थे। कोई मिसेज मोहन साथ वाली सहेली की साड़ी सराह रही थी—बड़ी सोबर साड़ी है!

—ऐसी साड़ियां भी रखनी पड़ती हैं! सहेली ने कहा।

—सूती है, लगती नहीं'''एम्पोरियम की है?

—हां! उत्कलिका की!

वह औरों के पीछे-पीछे मेन हाल में चला आया। वहां बप्पा की एक बड़ी तस्वीर ठिगनी मेज पर रखी थी। अगरबत्तियां जल रही थीं'''बहुत-सी फूल-मालायें भी पड़ी थीं—

—आजकल, मेरा मतलब है इस मौसम में गेंदे के फूल तो मिलते नहीं'''किसी एक ने कहा।

—बेंगलोर से आते हैं आजकल'''किसी ने उत्तर दिया।

तब तक बच्चों के लौटने का शोर भीतर आया। गाड़ियों के दरवाजे खुल-बंद हो रहे थे'''सारे बच्चे अप्पू घर से लौट आये थे।

आकर सब अपनी मम्मी-पापाओं से लिपटने लगे—

—एंज्योड बेटा!

—यस डैडी'''वैरी मच'''

—क्या-क्या खाया?

—आइसक्रीम! पिज्ज़ा!'''

—एण्ड मैंगी'''फ्रूटी'''

—एवरी थिंग पापा'''

—लवली पिकनिक मम्मी'''

बड़े दामाद का बेटा उसकी गोद में चढ़ गया था। वह उनकी मूछों से खेलता हुआ पूछ रहा था—वो किसका फोटो है डैडी?

उसके डैडी ने नहीं समझा तो उसने इशारा करके बताया—वो···वो··· डैडी !

—वो···तेरे नाना जी का है ! नाना जी का है ! कहते हुए बड़े दामाद ने अपने बेटे के गाल थपथपा दिये । बच्चा हंसने लगा । उसकी समझ में नहीं आया—बच्चा किस पर हंस रहा था···या यों ही हसने लगा था । बच्चे तो हसते हुए ही अच्छे लगते हैं ।



मेरा भारत महान !

सुबह-सुबह उसका फोन आया। वो पंजाब नेशनल बैंक, शास्त्री नगर से बोल रहा था।

—जी ! मैं अभी एयरपोर्ट से सीधा बैंक आया हूं···यहीं पंजाब नेशनल बैंक से बोल रहा हूं···जी हां मैं अनिल···आपने पहचाना···आप तो अब तक भूल गए होंगे·· मैं आपके लिए बीस हज़ार का ड्राफ्ट बनवा रहा हूं ! ···आपको साइनिंग देना था न···

मुझे कुछ धुंधला-सा याद आया···अनिल ! कौन अनिल ? एक अनिल प्रोडक्शन मैनेजर हुआ करता था। दूसरा अनिल इस वक्त नीरजा का असिस्टेंट है···वह कभी-कभी फोन करता है। पर ये बंबई से आने वाला अनिल···यह तीसरा अनिल कौन-सा है ? फिल्मों की दुनिया छोड़े अब कई बरस हो चुके हैं ··और खोये या भूले हुए पेशेवर संबंध याद नहीं आते···

तभी एक मकान याद में कौंधा···उस घर की दीवारें और कमरे याद आए···सोफो की गद्दियों की मैलभरी बासी महक याद आई···स्कॉच की बोतल में भरी देसी व्हिस्की याद आई···उसका कड़वापन भी याद आया, पर अनिल का सरनेम भी याद नहीं आया और न उसकी शक्ल ही याद में कौंधी। मैंने अपनी याददाश्त पर हलका-सा ज़ोर डाला···कुछ साफ नहीं हुआ। इस स्थिति में मुझे कुछ बुरा भी नहीं लगा, क्योंकि जिसे मैं भूल जाना चाहता हूं उसे सचमुच भूल जाता हूं···यह एक अच्छी आदत मुझमें विकसित हुई है। बस, हलके-से इतना याद आया कि यह आदमी एक फिल्म प्रोजेक्ट ले के आया था और बात बहुत ज्यादा करता था। यह वह दौर था जब मैं अधिकांश फिल्में लिखना छोड़ रहा था और नई फिल्में

साइन नहीं कर रहा था। मैं अपना अधिकांश समय पत्रकारिता और लेखन में लगाना चाहता था। इसी दौर में अनिल मेरे पास आया था—उसने उस अधूरी फिल्म को खरीदा था, जो बंद पड़ी थी और जिसका लेखक मैं था। इसीलिए अनिल एक नैतिकता के तहत मेरे पास आया था। पर ये सब बातें तो मुझे बाद में याद आई थीं।

एकाएक इतने दिनों बाद और बिना किसी पूर्वसूचना के, जब उसका फोन मिला तो मुझमें कोई उत्साह नहीं जागा। पर इस तरह से कोई अपना पुराना वादा याद करके पैसे देने चला आया है—यह मुझे अच्छा लगा।

अनिल ने फोन पर कहा—आप से मिलना है…कास्ट मैंने तय कर ली है—विनोद खन्ना, रजनीकांत और ऋषि कपूर…तीन लड़कियों में डिम्पिल, पूनम ढिल्लो और फरहा ''विनोद खन्ना ने महूरत की तारीख सत्ताइस जुलाई दी है, इसलिए स्क्रिप्ट का रियीजन बहुत जल्दी करना है आपको…

मुझे ताज्जुब-सा हुआ कि अनिल यह सब बातें बैंक से क्यों कर रहा है…निश्चय ही वह बैंक मैनेजर के कमरे में बैठा होगा और इन तमाम नामों से उस पर असर डाल रहा होगा।

वह आगे बोला—तो आपसे मिलना जरूरी है…

—कल मिलिए।

—कल तो मैं चण्डीगढ़ चला जाऊंगा।…आपको बताया था न, मेरे ब्रदर-इन-ला वहां डी० आई० जी० हैं, डी० आई० जी०, पुलिस…मैंने दिल्ली लैण्ड करते ही यह पहला फोन आपको किया, नहीं तो आप क्या सोचते होंगे कि कैसा आदमी है, वादा करके नहीं लौटा…तो ऐसा करते हैं, बीस की जगह तीस हजार का ड्राफ्ट बनवा देता हूं…एयर टिकट वगैरह सबके एक्स्ट्रा हो जाएगा…आपको बंबई तो आना-जाना ही पड़ेगा…

—तो कल आप चण्डीगढ़ जा रहे हैं। मैंने उसकी बात काटी।

—जी हां…कल चण्डीगढ़, परसों जालंधर…मण्डे को वापस। तो स्टैण्डर्ड मे मिलें, रीगल के ऊपर…जो समय आपको सूट करे…ठीक है दो और ढाई के बीच में…ओ० के०…

बात समाप्त हो गई। मैं अपने कामों में लग गया। करीब आधे घंटे बाद अनिल का फोन फिर आया—सॉरी, आपको फिर डिस्टर्ब कर रहा हूं · ये बैंक वाले ड्राफ्ट नहीं बना रहे हैं···और कल बुद्ध पूर्णिमा की छुट्टी है, परसों मण्डे··· इसलिए···

—लेकिन आप तो उन्हें ड्राफ्ट बनाने के लिए कैश दे रहे होंगे! तब उन्हें क्या दिक्कत है? मैंने थोड़ा चिढ़ के कहा।

—कैश नहीं···मेरे पास पचास हजार का ड्राफ्ट है! उसने उत्तर दिया।

—तब क्या दिक्कत है! ड्राफ्ट को बैंक खरीद सकता है!

—वही तो, लेकिन ये कह रहे हैं—आज नहीं हो पायेगा···होगा भी तो मण्डे से पहले नहीं···खैर ठीक है, मैं मण्डे को आपको लौटा दूंगा··· आप जब स्टैण्डर्ड में आएं तो मेरे लिए एक-डेढ़ हजार कैश लेते आएं··· टैक्सी से चण्डीगढ़ जाऊंगा तो कुछ लिक्विड मनी की जरूरत पड़ेगी···तो दो और ढाई के बीच में स्टैण्डर्ड! ओ० के०!

उसने फोन बंद कर दिया। मुझे ताज्जुब हुआ कि वह यह बात बैंक से कैसे कर रहा था। हवाई जहाज से आया है। एयरपोर्ट पर उतरा है—उतर कर सीधा बैंक गया है। टैक्सी से चण्डीगढ़ और जालंधर जाने का प्रोग्राम है और इस आदमी की जेब में इतना भी कैश नहीं कि सफर की छोटी-मोटी जरूरतों के लिए पैसे मांगने लगा!

मुझे शक हुआ···क्योंकि यह पूछने पर कि वो कहां ठहरा है, उसने कोई पता नहीं दिया, बोला था—अभी तो सीधा बैंक आया हूं···ठहरने का कुछ ठीक नहीं किया!

एक तो मई महीने की जलती गर्मी और रीगल के पास पार्किंग स्पेस की कमी···दूर पर कहीं पार्किंग करके स्टैण्डर्ड तक चिलचिलाती धूप में पैदल चलने की पेशकश—मैं इस शकपूर्ण स्थिति और गर्मी की अधिकता से इसी नतीजे पर पहुंचा कि मैं मिलने नहीं जाऊंगा। स्टैण्डर्ड में उसका जो पचास-सौ का बिल बनेगा, बनेगा···

मुन्नी का ऑपरेशन कल ही हुआ था। उसके लिए तो नहीं, पर तिमारदारी में लगे लोगों के लिए खाना लेकर जाना ही था। मुन्नी की

चिन्ता भी दिमाग पर हावी थी, पर पहले यही सोचा था कि साढ़े-बारह-एक पर खाना पहुंचा कर दो-सवा दो स्टैण्डर्ड चला जाऊंगा। गाड़ी रेलवे हास्पिटल के कम्पाउण्ड में छोड दूंगा। वहां से स्कूटर ले लूंगा। लेकिन स्कूटर वाले नजदीक जगह जाने से इनकार कर देते हैं और उस धूप में ऐसा स्कूटर खोजना जो रीगल तक चला जाये और झख-झख न करे, मुझे थोड़ा मुश्किल भी लगा।

आखिर मुन्नी के कमरे में पहुंचा। अट्ठारह को आपरेशन हुआ था—आज उन्नीस थी और रात भर थक कर मैं सुबह-सुबह ही अस्पताल से घर पहुंचा था—तभी अनिल का फोन मुझे मिला था।

खाना लेकर अस्पताल पहुंचा तो दो बज रहे थे। जगदीश, पप्पू, दीपू और गोलू ने खाना खाया, मैंने भी। मुन्नी के ग्लूकोज चढ़ रहा था और वह सेडेटिव लिए पड़ी थी। स्टैण्डर्ड न जाने की बात मन में तो तय कर ही चुका था—ठंडे कमरे और बाहर चिलचिलाती धूप ने उसे और पक्का कर दिया। मुन्नी की चिन्ता, दिमाग में तनाव, किसी से बेवकूफ न बनने का मन का सुझाव···और सब तीनों बातों के मिल जाने से बड़ी गहरी नींद आई—पौने तीन सोया तो छः बजे उठा। और जब उठा तब तक मैं यह भी भूल चुका था कि मुझे कहीं, किसी से मिलने जाना था।

घर पहुंचा तो गायत्री ने बताया—किन्हीं अनिल का फोन तीन बजे आया था। तुम्हें मिलना था, वे इंतजार कर रहे थे। दुबारा फिर फोन आया—करीब चार बजे, मैंने कह दिया—अस्पताल में अटक गये होंगे। हमारी भतीजी का कल ही आपरेशन हुआ है।

मैंने सुन लिया। कहना तो कुछ था नहीं। मन में सोचा बला टली। उसे चण्डीगढ़ जाना है तो लक्जरी बस से भी जा सकता है—टैक्सी से जाने की जरूरत क्या है···और फिर वह सुबह तो निकल ही जाएगा।

लेकिन सुबह के अखबार के साथ ही अनिल घर पर आया। उसे अब मैंने पूरी तरह पहचाना—शकल भी याद आ गई—सामने थी ही। उसके चेहरे पर कोई खास भाव नहीं था। न इतने सुबह आ जाने का कोई संकोच। मैंने उसे बैठाया और सोचा कि हजार-डेढ़ हजार का इंतजाम इसने कर ही लिया होगा।

मैंने कल न मिल सकने के लिए माफी मांगी तो उसने कहा—नहीं ··· नहीं···मैं समझ सकता हूं। आप तो वादे के बड़े पक्के आदमी हैं। कहते हुए उसने बैग रख दिया।

—आप ठहरे कहां हैं?

—लोदी रोड पर एक दोस्त के यहां···तो साहब अब ये प्रोडक्शन लांच हो गया है ··यह डेफिनिट समझिए·· एक करोड़ लगेगा···या ज्यादा पच्चीस लाख तो महूरत पर ही समझिए। सबको साइनिंग देना पड़ेगा। ···ढाई-तीन लाख तो स्क्रिप्ट पर ही खर्चा होगा···होटल है, आना-जाना···एयर फेयर, इंसीडेंटल्स ··कम-से-कम दो लाख ड्रेसेज पर—महूरत की। पैसे का क्या है ··लगायेंगे तो आएंगे···पैसा तो बिखरा पड़ा है···

—लेकिन इतने दिनों बाद यह प्रोजेक्ट आपने रिवाइव क्यों की? इस समय तो इंडस्ट्री का हाल ठीक नहीं है—पैसा आ ही नहीं रहा है। सब रियल एस्टेट में लग रहा है! मैंने कहा।

—तभी तो, तभी तो···आपने तो मेरा फ्लैट देखा था···ससुराल वालों की मेहरबानी पर कब तक पड़ा रहता···वैसे वो लखपती-करोड़पती हैं···आपने तो देखा है···मैंने वह पुराना फ्लैट छोड़कर अपना नया फ्लैट खरीद लिया है—सस्ता मिल गया—सोलह लाख का ··फर्नीचर, फिटिंग्स, आर्ट और डेकोरेशंस मिला कर समझिए पच्चीस का पड़ा! वह कह रहा था और बैग में से एक फाइल निकालता जा रहा था।

लेकिन मेरी समझ में नहीं आया कि मेरी कही हुई बात का उत्तर यह पच्चीस लाख का फ्लैट कैसे बन गया। मैंने उसकी तरफ देखा—उसने निर्विकार भाव से पुरानी स्क्रिप्ट की फाइल निकाल ली थी। मुझे देते हुए बोला—जरा देखकर राय दीजिए···मेन कास्ट के अलाव और कौन-कौन होंगे, मैंने सोच कर नोट किए हैं।

मैंने स्क्रिप्ट देखी। पहले पेज पर कंपनी के नाम के बाद फिल्म का नाम था—'दुनिया देखेगी!' और फिर बड़े-बड़े अक्षरों में मेरा नाम था—रिटिन बाई···और हर पेज पर एसोसिएशन में रजिस्टर्ड होने की मुहर थी।

—आपने फिल्म का नाम बदल दिया।

—इसमें भी पच्चीस हज़ार लग गए। किसी और के पास था यह टाइटिल···खर्चा तो होता ही है···इसी से इंडस्ट्री चलती है! हम आप चलते हैं···

मैंने उसे फिर देखा। वह कोई दूसरी फाइल निकाल रहा था। मैंने पूछा—आप पत्नी के साथ आए हैं?

—जी नहीं, वो घर पर हैं! उसने कहा और एक एक्सरे मेरे सामने कर दिया—मैं आपसे इतने बरस नहीं मिल पाया···उसकी कहानी इस एक्सरे प्लेट में है।

मैंने एक्सरे देखा—घुटने का एक्सरे था। टूटी हड्डी की जगह तीन पिनों वाली रॉड साफ दिखाई दे रही थी···जब तक मैं कुछ पूछूं—उसने अपना घुटना नंगा कर लिया था—आपरेशन और स्टिचिंग के निशान सामने थे।

— ये···यहां···रगड़ता है तो बहुत पेन करता है!

—ओह! तभी आप लंगड़ा रहे थे! मैंने सहानुभूति से कहा, तो उसका उत्तर फिर अजीब था।

—जी हां' इसीलिए मैंने सोचा है, अब मैं खुद डायरेक्ट कान्टैक्ट रखूंगा। आपने देखा था, मेरे चारों तरफ तरह-तरह के लोग चिपके हुए थे। मेरी वाइफ ने कहा—ये सब तुम्हें चीट कर रहे हैं, मैंने सबको अलग कर दिया। अब सब डायरेक्ट है···

तभी मुझे वो दिन अच्छी तरह याद आ गए···उसकी बीवी सुंदर थी और ज्यादातर लोग भाभी जी-भाभी जी करते हुए उसी के साथ चिपके रहते थे। हर बात में अनिल की जगह उसकी पत्नी को चढ़ाते रहते थे—कस्ट्यूम डिजाईनिंग तो भाभी जी ही करेंगी···हेयर स्टाइल्स भी आप ही तय कीजिएगा।

मुझे लगा नहीं था कि उसकी पत्नी इन बातों से खुश होती थी। वह और प्रोड्यूसरों की बीवियों की तरह शौहरत की तेजाबी दुनिया में नहीं रहती थी। वह एक निहायत घरेलू परन्तु सुंदर औरत थी। अपने अमीर घर का गुमान भी उसे नहीं था।

—हंसा आपको बहुत याद करती है! उसने मुझे बताया। मुझे उसका नाम अच्छी तरह याद आ गया—हंसा! हंसा ही नाम था उसका।

—एक्सीडेंट में वह भी साथ थी। उसके चौदह स्टिचिज़ लगे। उसकी चैन खोई···चालीस हज़ार की थी। मेरी घड़ी दस की थी···शादी वाली थी। हॉस्पिटल पहुंचे तो हंसा का एक्सरे करवाया···मशीन वाला चीखने लगा—पूरी मशीन खून से खराब कर दी! खून साफ करके आओ! मैं चीखा—जान बड़ी है कि मशीन! कितने की आती है मशीन—दो लाख! चार लाख! दस लाख! पुलिस ने पूछा—एक्सीडेंट किसने किया···मैंने कहा पता नहीं—एक्सीडेंट तो खुद मुझसे हुआ···रात थी हो गया···

मैं फिर उसकी बात का सिर-पैर नहीं पकड़ पाया। वो अब चाय पी रहा था। बोला—इस बड़ी प्रोजेक्ट के साथ ही एक स्माल बजट फिल्म भी बनानी है···आपको ही लिखनी है, टाइटिल है—"मेरा भारत महान"। ये टाइटिल मैंने दिल्ली में लगे होर्डिंग्स से ही पकड़ा है···देशभक्ति की होगी ··इसके लिए बजट रखा है चालीस लाख···ज़रूरत पड़ी तो पचास लाख तक भी ठीक है···उसने चाय का घूंट लिया।

बीच में फोन आ गया तो वह चुपचाप बैठा रहा। फिर बोला—आप तो बहुत समझदार आदमी हैं सर···बातों में जो नहीं कहा जाता, वह भी समझ जाते हैं···यही खूबी है आपकी!

वह किस तरफ मुड़ना चाहता है, यह समझ कर मुझे शंका हुई। मैंने उसे सिगरेट दी। उसने सिगरेट सुलगाई। कश लेते हुए बोला—टैक्सी दस बजे आएगी, वही लोदी रोड, वहां से डी० आई० जी० साहब··· चण्डीगढ़ में···वही मेरे ब्रदर-इन-ला! उन्हीं के साथ जालंधर जाऊंगा। उन्हीं की बुलेटप्रूफ कार में···पच्चीस-तीस लाख रुपया पकड़ूंगा और लौट आऊंगा! लोग जानते हैं फिल्मों में कितना पैसा लगता है। डी० आई० जी० कहेंगे तो कौन मना करेगा!

मैंने फिर उसकी तरफ देखा···उम्मीद की कौन-सी किरन उसकी आंखों में थी—वहां न कोई किरन थी और न अंधेरा।

फिर एकाएक उसने बात बदली—

आदमी के साथ औरत का जितना वक्त इज्ज़त से गुजर जाए, उतना

ही वक्त अच्छा है···वह अपने आप बोलने लगा—और उसने छोटा-सा कश लेकर फोन की तरफ देखा !

—फोन करना है, कर लीजिए ! मैंने कहा।

—एसटीडी है ?

—हां !

—छोड़िए···वैसे बाम्बे···

—कर लीजिए···

फिर कभी कर लूगा···चण्डीगढ़ से कर लूंगा !

अब वह चुप बैठा हुआ था। मैं भी चुप था। खामोशी भी बहुत नार्मल थी। हम काफी बातें कर चुके थे। पर उसका उठने का कोई इरादा नहीं दिखाई दे रहा था। मैंने खामोशी तोड़ी···चलिए इतने बरसों बाद आप फिर एक्टिव हुए हैं।

—इज्जत बहुत बड़ी चीज है सर !

मैं फिर चौंका।

—किसी को कहना पड़े और तब काम हो···तो कोई इज्जत नहीं रह जाती और आज इज्जत के सिवा क्या बचा है किसी के साथ ! वह बोला।

मैं फिर बात का सिरा नहीं पकड़ पाया परन्तु दूसरे ही क्षण मुझे लगा कि बात फिर लौट आई है। मैंने कुछ खुलासा करने के लिए पूछा—तो टैक्सी आपने लोदी रोड बुलाई है ?

—हां···रास्ते में ड्राइवर मांग ही लेते हैं पेट्रोल के लिए। टैक्सी वहीं खड़ी रहेगी चण्डीगढ़ ! वहां से तो बुलेटप्रूफ कार में जाना है···पच्चीस-तीस लाख तो समझिए पड़ा हुआ है, उठा के लाना है···

—बैंक आज बंद है···इसलिए मेरे पास भी···मैंने पैसे बचाने की नीयत से कहा।

—पांच सौ भी काफी हैं ! उसने कहा।

मैंने राहत की सांस लेते हुए पांच सौ पर समझौता करना ठीक समझा···यह जानते हुए भी कि मैं ठगा जा रहा हूं और ये आदमी लौट कर आने वाला नहीं है। मैं अलमारी से पैसे निकाल ही रहा था कि उसकी

आवाज़ आई'''सर ! हंसा ने दूसरी शादी कर ली है ! अब आपसे क्या छुपाना'''

मुझे शॉक-सा लगा। मैंने उसे पैसे देते हुए पूछा—लेकिन अभी तक तो आप'''कब कर ली हंसा ने दूसरी शादी ? आपसे डायवोर्स'''

—हां ! उसने डायवोर्स ले लिया था ! आखिर उसकी इज़्ज़त का सवाल भी तो था ' किसी दिन अगर मैं उसकी इज़्ज़त न बचा पाता—तो ? वो मेरे लिए टोटली फेथफुल थी'' इसलिए ज़रूरी था कि वो मुझे तलाक दे दे ' और अपनी इज़्ज़त की रक्षा करे ! सर पैसा तो लौट आता है—इज़्ज़त तो नहीं लौटती ! कहते हुए वह खड़ा हो गया।

मैं करीब-करीब सकते में था !

उसने जूता पहना तो थोड़ा-सा लड़खड़ाया। मैंने उसे संभालना चाहा तो उसने दरवाज़े का सहारा ले लिया। फिर वह कुछ नहीं बोला। रुपये जेब में रख कर और बैग उठा कर वह सीढ़ियां उतरने लगा—अटक-अटक कर। मैं उसे देखता रहा। मैंने कहा—सीढ़ियां आपको तकलीफ दे रही हैं ''

नहीं सर ! उतरने में ज़्यादा तकलीफ नहीं होती'''आखिरी सीढ़ी पर एक पल रुक कर उसने कहा—प्लीज़ तैयार रहिएगा, पहली फिल्म रिवाइज़ करनी है और दूसरी आपको लिखनी है—'दुनिया देखेगी !' और 'मेरा भारत महान !'

मैंने कहा—ऑल द बेस्ट अनिल !

थैंक यू सर ! कहता हुआ वह गली में पहुंच गया।

मैंने बारजे से उसे देखा—मेरा 'दुनिया देखेगी' और 'मेरा भारत महान !' का प्रोड्यूसर लंगड़ाता हुआ गली से मेन रोड की तरफ मुड़ रहा था। मैंने वेव किया लेकिन उसने पलट कर नहीं देखा।



चार महानगरों का तापमान

गर्मी बहुत थी।

—ऐसी गर्मी तो पहले कभी पडी नहीं…

—गर्मी इतनी नहीं है…तुम्हारा-शरीर ज्वालामुखी है…

उसके दिमाग में गुलाबी जुगनू कौंध रहा था…कभी-कभी दिखाई देने वाला गुलाबी जुगनू…गोलकुण्डा वाइन…उसने कहा—रैंड वाइन चख के देखो, अच्छी है! उसने होंठों से कप हटाया। उसने रैंड वाइन से भीगे हुए ओंठों को हलके से चखा।

उसने हलके से उसकी कमर पर हाथ रखा…वह पेट के बल आधी हो गई। उसने कहा—रैंड रम! नहीं समझीं…लिख के देखो…समझ जाओगी। कहते हुए उसने उसकी अधनंगी पीठ पर लेटते हुए हाथ बढ़ाकर साइड टेबिल से कागज उठाया…लिख के देखो…रैंड रम! वह समझ गई…हलके से मुस्कराई…

—खूबसूरती भी मुसीबत बन जाती है…

—तुम हो ही इतनी खूबसूरत!

—उन्हें मुझ पर नहीं, मेरी खूबसूरती पर शक है!

फिर वह दुबका हुआ गुलाबी जुगनू कौंधा।

—तुम्हें मेरी एक ब्रेस्ट छोटी लगती है?

उसने हाथ से महसूस करते हुए कहा—कौन कहता है?

—वही कहते हैं…कई बार कह चुके हैं…

—सिलीकोन डस्ट से बराबर हो सकते हैं…नीचे, यहां से आपरेट करते हैं। सोसायटी साइज से ब्रेस्ट बडी हो तो चर्बी का एक लेयर भी निकाल देते हैं…

वह टांगें सिकोड़ कर बिल्ली की तरह हो गई···

—सोसायटी साइज़···

—जैसी तुम्हारी हैं···परफैक्ट !

—आह···

उसने बांहें खोल दीं—कम टु मी···

उसने उसे बाहों में भर लिया।

किशमिश एक···किशमिश दो···

कौंधता हुआ गुलाबी जुगनू—

—आई हैव ए ब्रेन फॉर बिजनेस एण्ड ए बॉडी फॉर सिन।

—ओह आई रियली लव यू···

—कितने ज्वालामुखी फूटते हैं तुम्हारे शरीर से···

—और कितने घोड़े दौड़ते हैं तुम्हारे शरीर से···

ओह ''मुम···मुम···

—जल्दी क्या है !

हलके-हलके अलाव जलने लगे।···

जगह-जगह रेशमी रास्ते खुलने लगे···वे रास्ते जो फोल्ड कर दिए गए थे···

—तुम मर्दों की मेल सोसायटी मुझे पसंद नहीं है···

—क्यों ?

—हर मर्द सिर्फ बिस्तर तक ले जाना चाहता है···

—पर हर औरत तभी बिस्तर तक जाती है, जब वह जान लेती है कि बिस्तर से निकलने के बाद उसे क्या मिलेगा !

—हरा ?

—रैड वाइन ?

—ओ० के०···

—चखो, बहुत अच्छी है···

उसने देर तक वाइन से भीगे ओंठ चखे···

कहीं छुपी चिड़ियां धीमे-धीमे बोलती रहीं···

रैड रम !

लिख मे देखो…

और उसने काँपते गुलाबी जुगनू को देखा…दोनों बांहों में उसे कंधे से समेटा…उसके ओंठों ने उसे गर्दन से कान तक छुआ कि वह ढीली-सी पड़ने लगी…कुछ चौकन्नी-सी हुई…

—क्या हुआ ?

—आवाज़ सुन रहे हो ?

—कैसी आवाज़—उसने सुनने की कोशिश करते हुए कहा—कोई आवाज़ नहीं है !

—है !

—ऐसी को है…रैड रम—लिखू !

—रैड रम—नहीं…कोई आवाज़ है…वह और सिमट गई…

—क्या हुआ है तुम्हें ?

—मैं कहती हूं…कोई है…आहट सुनो…

—लेकिन हो ही कौन सकता है…

—तुम्हारी बीवी हो सकती है…

—वो कहां…वो तो बच्चों को लेकर ननिहाल गई है…डोंट बी सिली ! …लिखू…

—तुम्हें आवाज़ नहीं सुनाई देती ! उसने चादर लपेटी।

—कोई आवाज़ नहीं है…यह कहकर भी उसने सुनने की कोशिश की। कुछ शक उसे भी हुआ—कुछ लगता तो है।

—लगता नहीं है।

तभी एक हलकी ठक-ठक की आवाज़ हुई।

—है न ! कोई खटखटा रहा है।

—लगता तो है !

—कौन हो सकता है ?

—तुम सोचो…लेकिन कोई होता तो बैल बजाता…

—बैल खराब भी हो सकती है !

—लेकिन इस वक्त कौन हो सकता है।

—यही तो !

—तुम्हारा हस्बैण्ड भी हो सकता है। तुम अपने हस्बैण्ड की दस्तक नहीं पहचानती? कोई है तो जरूर! कहते हुए उसने वाइन की बोतल और प्याले बैड के नीचे खिसका दिए।

दस्तक तेज होती गई!

—कोई और भी हो सकता है—मिलने वाला।

—अब तो दरवाजा खोलना ही पड़ेगा। तुम्ही देखो···

—तुम जाके देखो···मुझे उठने मे देर लगेगी!

दस्तकें तेज होती जा रही थी।

—ये तुम्हारा हस्बैण्ड ही है।

—वो कैसे हो सकते हैं···

—क्यों? उसका घर है···वह कभी भी आ सकता है।

—वो एक हफ्ते से पहले नही आएंगे, मुझे मालूम है। जाओ न दरवाजा खोलो। नही तो जो भी है, लगता है दरवाजा तोड़ देगा···

—लगता है वह दरवाजे को चीर रहा है···दस्तक अब नही है।

—कहा न, जाके देखो·· प्लीज।

—और अगर वह तुम्हारा हस्बैण्ड हुआ तो?

दोनों ने एक-दूसरे को चिन्ता से देखा···

—आखिर जो होना होगा, होगा, कुछ इस अंदाज से वह उठा।

—अगर कोई और हुआ तो?

—तो वह तुम्हें ही मेरा हस्बैण्ड समझेगा। उन्हें यहां कोई नही जानता। वे तो महीनों दूर पर रहते हैं।

उसे कुछ राहत मिली।

आखिर वह गया। उसने दरवाजा खोला।

एक कुत्ता तेजी से कूदता हुआ भीतर आ गया···और सीधा विस्तर की तरफ भागा। वह देखता रह गया—यह तो···

—हां, जैकी है! तब तक कुत्ता बड़े लाड़ से उससे लिपटने लगा था। उसने भी कुत्ते को बांहों में भर लिया। कुत्ते ने प्यार से उसकी चादर इधर-उधर खिसका दी थी। वह कहीं से नगी, कहीं से अधनंगी थी। वह मुस्कराकर उसे और जैकी को देख रहा था···कभी बैड के ऊपर दीवार

पर लगी न्यूड पेंटिंग को देख रहा था। कुत्ते ने आज उसे बैडरूम ध्यान से देखने का वक्त दे दिया था···नहीं तो वक्त ही कहां मिलता था। बैडरूम कीमती चीजों से सजा हुआ था। सभी-लगभग विदेशी थीं। सामने वाली दीवार पर उसका एक बड़ा पोर्ट्रेट लगा था। कुत्ते को और ज्यादा वक्त न देकर उसने पूछा—ये किस पेंटर ने बनाया है?

—मुझे नाम याद नहीं। इन्होंने बनवाया था···पचास हजार दिए थे। वह पेंटर इनका दोस्त था···दिक्कत में था।

—बहुत खूबसूरत पोर्ट्रेट बनाया है।

—तभी तो कहती हूं—उन्हें मुझ पर नहीं, मेरी खूबसूरती पर शक है!

वह हंसा।

जैकी अब तक शांत हो चुका था और खुद ही बैड से उतर आया था। जैकी ने उसे देखा तो भौंका।

—जैकी···नो···

पर जैकी उसे देख-देखकर भौंकता ही रहा।

—हम भी कितना डर गए थे। कहते हुए उसने बैड में घुसकर उसे दोनों बांहों में थाम लिया···

गुलाबी जुगनू कौंधने लगा।

किशमिश एक···किशमिश दो···

उसने बैड के नीचे हाथ डालकर रैड वाइन की बोतल घसीटी। बोतल से ही उसे दो-तीन घूंट दिए। वाइन से भीगे ओंठों को उसने चखा···जैकी भौंका।

—कम टु मी···

—रैड रम···लखू।

—लिखो! लिखो! ···ओह···आह···

उसके शरीर के ज्वालामुखी फूटने लगे थे।

तेज रफ्तार घोड़े दौड़ने लगे थे।

जैकी लगातार भौंक रहा था···तेज आवाज में भौंक रहा था।

जैकी चारों महानगरों मे भौंक रहा था।

—इसे रोको !

—जैकी ! नो !

पर जैकी भौंकता रहा···सारे ज्वालामुखी फट-फट कर शांत हो गए। सारे घोड़े दौड़ते-दौड़ते थक गए। गुलाबी जुगनू मसलकर मर गया।

जैकी चारों महानगरों में भौंक रहा था।

चारों महानगरों का तापमान उस दिन, उस दौर में, लगभग समान था। गुलाबी जुगनू कौंध रहे थे, ज्वालामुखी फट रहे थे और जैकी भौंक रहा था।



दालचीनी के जंगल

जब भी उसे मौका मिलता तो वह मुर्दाघर में जाकर बैठ जाता। वैसे उसे अस्पताल में कभी-कभी लोगों ने इधर-उधर बैठे या घूमते भी देखा था। किसी को कुछ भी पूछने की जरूरत नहीं पड़ती थी···अस्पतालों या स्टेशनों पर कौन किसे पूछता है कि तुम कहां से आए हो? मरीज़ और मुसाफिर से कोई उसका नाम-धाम नहीं पूछता।

उस दिन भी वह आराम से मुर्दाघर में ही बैठा था। वैसे जगह तो नहीं थी—मुर्दे एक-दूसरे पर बोरों की तरह चिने हुए थे। मुर्दाघर—मुर्दाघर में ज्यादा गोदाम-सा लग रहा था। उसे इस बात से राहत मिलती थी कि मुर्दे कुछ बोलते नहीं थे। इंसानी आवाज़ों से उसकी नसें फटने लगती थीं···दिमाग में आवाज़ धुंध की तरह गूंजती थी तो उसे लगता था जैसे उसकी खोपड़ी में आतिशबाजी की चरखियां घूम रही हों ··उड़ती चिनगारियां कानों के रास्ते निकल रही हों···

ऐसा तभी होता था जब मुर्दाघर के बाबू के साथ कोई किसी मुर्दे की शिनाख्त-पहचान के लिए आता था। कुछ आवाज़ें तभी आती थीं और उसके दिमाग में चरखियां चलने लगती थीं।

ज्यादातर मुर्दे ऐसे थे जो गैस की घुटन से मरे थे···और अब सांस रोके हुए आराम से पड़े थे। उनमें से बहुत-से मुर्दों को वह अच्छी तरह पहचानता था···बस, उनके नाम उसे याद नहीं थे। मुर्दों को भी उसका नाम याद नहीं था···अपने नाम को याद करने के लिए वह दिमाग पर बहुत ज़ोर डालता था, पर उसे याद ही नहीं आता था। कभी-कभी तो अपना नाम याद करते हुए उसके दिमाग से खून के फव्वारे छूटने लगते थे और चरखियां भी चलने लगती थीं—खून और आग के इस तमाशे में वह बेहाल और बदहाल हो जाता था और तब उसे मुर्दाघर में ही खामोशी

और शांति मिलती थी। फव्वारे धीरे-धीरे सूख जाते थे और चरखियां बुझ जाती थीं···लेकिन फिर कुछ और होने लगता था···उसके फेफड़ों में गरम लू के अधड़ चलने लगते थे और आंखें फुलझड़ियों की तरह चिटचिटाने लगती थी···सामने सलमा-सितारे उड़ने लगते थे।

कभी-कभी मुर्दे आपस मे बात करते थे और किसी एक मुर्दे के दुःख-सुख में शामिल हो लेते थे—अच्छा हुआ, अब आराम से तो सो रहा है ··नही तो रोज आकर सूदखोर सताता था ··बेचारा भागा-भागा छुपता फिरता था। पांच लड़कियां थी सामने और एक लंगड़ा बेटा···

—तीन लड़किया तो पार लग गईं।···वे मुल्तानिया अस्पताल के मुर्दाघर में पड़ी हैं, दो का पता नहीं। दूसरा मुर्दा खबर देता, तो तीसरा पूछ लेता—इसे मालूम है?

—मालूम है, तभी तो इतनी बेफिक्री से पड़ा है। चैन की नीद ले रहा है।

—कोई औरत नही आई अपने यहा?

—वो सब मुल्तानियां मे पडी हैं।

—आखिर इज्जत का सवाल भी तो है···मर्द-मुर्दाघर मे वो लाज-शरम से मर जाती।

जब मुर्दे बातचीत कर रहे थे, तब उसे अपनी बीवी का ख़याल भी आया था···उसकी सूरत सामने नाच रही थी, पर नाम उसका भी याद नही आता था। वह उसे क्या कहके पुकारे! किस नाम से आवाज़ दे? उस रात तो वह बड़े का गोश्त पका रही थी जिस रात गैस फटी। सर्दियों की रात थी और चूल्हा दोनो तरह से गर्मी दे रहा था। लपटों से भी और पकते गोश्त की खुशबू से भी। उसकी बीवी रह-रहकर उसे देख के मुस्करा रही थी···वह दिन एक अच्छा दिन था जब इतने दिनों बाद दोनों गोश्त खाने वाले थे···उसकी बीवी ने उसे बताए बिना जो पैसे बचाए थे, उन्ही से वो बड़े का गोश्त लाई थी···

—तुम्हें अगर दस दिन कलिया न मिले तो तुम मेरा कलिया बना देते हो! उसकी बीवी ने उसे मनुहार भरा ताना दिया था और शोखी से मुस्करा दी थी। उसकी सहेली ने विदा के वक्त उसे कन्नौज के इत्र की एक

छोटी-सी शीशी दी थी…जिसका चावल बराबर फाहा वह अपनी चुड़ी में दबा लेती थी और तब वह कस्तूरी की तरह महकती थी। उसकी बीवी को अपने तराई के जंगल बहुत याद आते थे…जिनमें हिरनों के झुंड घूमते रहते थे और जहा बरसात के दिनों में भीग कर दालचीनी के पेड़ महका करते थे। उन भीगते जंगलों की महक उत्तरी हवाओं पर तैरती आती थी …जिसके लिए उसकी बीवी भोपाल में बहुत तरसती थी।

…उसकी बीवी का तन-बदन भी दालचीनी के जंगलों की तरह भीगता और महकता था…

मुर्दाघर में तेजाब महकता था…ठीक वैसा ही जैसा गैस फटने पर महका था…लेकिन अब वो आदी हो गया था…इस तेजाबी गैस की महक का। यही महक तो पकते कलिया की सोंधी महक में घुल-मिल गई थी और उसके बाद उसकी आंखों में गंधक सुलगने लगा था। धुआं निकलने लगा था। और उस धुएं के बीच और बाद फिर उसे उसकी बीवी दिखाई ही नहीं पड़ी थी।

उसके बाद तो अब चार साल हुए…हमीदिया अस्पताल का वह मुर्दाघर भी छूट गया, जहां वह राहत के लिए छुपकर बैठा करता था—उस दिन मुर्दाघर में गर्मी बहुत ज्यादा बढ़ गई थी। ठेकेदार ने पूरा बर्फ ही नहीं दिया था और जितनी सिल्लियां आई थी, वे गल चुकी थीं। तेजाब की महक वाला गंदला पानी नालियों में बीमार सांप की तरह सरक रहा था गर्मी न बढ़ती तो वह नहीं निकलता। गर्मी भी थी और चौकीदार ने उसे देख भी लिया था, इसलिए निकलना ही पड़ा।

जब दिमाग में फव्वारे नहीं फूटते थे और चरखियां नहीं चलती थीं तो कुछेक टुकड़े उसे याद आते थे। उसके बाद उसे कुछ याद नहीं आता था…अपना नाम तो कभी याद ही नहीं आता था…मुर्दाघर से निकलकर वह चुपचाप जहांगीराबाद की तरफ चला गया था…फिर छोला रोड से स्टेशन…ग्रीन पार्क…शाहजहानाबाद से घूमता हुआ लोहा बाजार… और फिर ठण्डी हवा ने उसे खींचा था तो श्यामला हिल्स की तरफ निकल गया था।

राहत तो कहीं मिलती नहीं थी और मुर्दाघर का चौकीदार कुछ ज़रा

ज्यादा चौकस हो गया था। अब वो घुसने ही नहीं देता था और घुस भी जाए तो वह गालियां देकर निकाल देता था। गनीमत यही थी कि जब से गैस फटी थी, भला हो उन लोगों का जो मुफ्त लंगर चला रहे थे, इसलिए उसे खाना मिल जाता था। वे दवाइयां भी देते थे पर वह तो दवाइयों से परे जा चुका था…।

लेकिन उसे कुछ भी तो पूरा-पूरा याद नहीं आता—टुकड़े-टुकड़े में याद आता है फिर खो जाता है—सब कुछ।

एक भीड़ में तो वह भी शामिल हुआ था…हजारों की भीड़ थी—हाय! हाय करती और मुआवजा मांगती। झण्डे थे, लोग थे, दफ्तियां थीं …कुछ पैसे भी मिले थे पर उसके बाद तो कुछ याद ही नहीं आता…तभी से तो वह सब कुछ भूला हुआ है…कई बार तो उसकी और जिस झुण्ड में भी वह शामिल हुआ था, उसकी तस्वीरें खिंची थीं…लोगों ने सिनेमा भी उतारा था…एक अखबार में उसकी तस्वीर भी छपी थी, पर उस पर उसका नाम नहीं था। अगर होता तो कम-से-कम वह अपना नाम तो जान लेता।

नाम की कमी ने उसे बहुत सताया था। इसी हाल में वह मुर्दाघर से बेदखल किए जाने के बाद निकला था। चौकीदार ने बहुत गालियां दी थीं। अब वहां वह पुराने वाले और उतने मुर्दे तो नहीं थे मुर्दों की यह बस्ती भी उजड़ गई थी जिससे पहचान और नाम की मुसीबत और बढ़ गई थी। आखिर मुर्दों में से शायद कोई उसे पहचानता…नाम लेकर पुकारता…

आखिर हमीदिया अस्पताल के फाटक से वह जब निकल रहा था तो किसी ने उसे देखकर और चौंककर कहा था—अरे तू!

तब एक पल के लिए उसे लगा था कि कम-से-कम यह एक आदमी है जो उसे पहचानता भी था और नाम से जानता भी था—इसीलिए तो वह उसके पीछे भागा था, यही चीखता-पूछता हुआ—मेरा नाम तो बता दे।

लेकिन पहचानने वाला वह आदमी तो इस बुरी तरह डर के भागा था कि चौक बाजार तक पीछा करने के बावजूद वह उसे नहीं पकड़ पाया

था और फिर उसी तरह अनाम-गुमनाम रह गया था।

इस दौड़-भाग के बाद उसके दिमाग में खून के फव्वारे फिर फूट पड़े थे और आतिश की चरखियां फिर चलने लगी थी। दौड़ते-दौड़ते वह हांफने लगा था और पस्त होकर तालाब किनारे बैठ गया था। इन्हीं झीलों के कारण दक्षिणी भोपाल के लोग बच गये थे···नहीं तो शायद पूरा-का-पूरा भोपाल बेहोश पड़ा होता, अंधा हो जाता या हरेक के फेफड़े फट जाते। एक पूरा का पूरा शहर मर जाता।

वहीं झील किनारे तब कुछ लोग बात कर रहे थे - बहुत बड़ी कंपनी है अमरीका की। उनके लिए हमारी जान की कीमत कीड़े-मकोड़ों से ज्यादा नहीं। वे तो आज से तीस-चालीस बरस पहले अपना गेहूं समुन्दर में फेंक देते थे, जब अपना भारत भूखों मरता था · इन्होंने जान-बूझकर यह कंपनी भारत में लगाई थी और वे अपनी गैसों को आजमाना चाहते थे। वह होश में आते-आते यह सब सुन रहा था और फिर बेहोश-सा हो गया था। उसे सबसे ज्यादा अफसोस इसी बात का था कि वह आदमी जो उसे उसका नाम बता सकता था, भागकर भीड़ में खो गया था और अब उसे उसका नाम बताने वाला शायद कोई नहीं था।

वह भोपाल को पहचानता था ··भोपाल का नाम भी जानता था, पर भोपाल न तो उसे पहचानता था, न उसका नाम जानता था।

इसी जान-पहचान और नाम के झंझट को निपटाने के लिए उसने सोचा था कि वह अपनी ससुराल चला जाए—तराई वाले इलाके में, जहां दालचीनी के जंगल महकते थे और कस्तूरी वाले हिरन घूमते थे—पर उसे तो अपनी बीवी का नाम तक याद नहीं आ रहा था···न उसकी बस्ती का···और फिर उसे वहां पहचानता कौन? पहचान भी लेता तो भी क्या वह उसका नाम उसे बता सकेगा? या उसकी बीवी का?

यह होशी-बेहोशी का अजीब आलम था।

न जाने कितने नीम-हकीम डाक्टरों को काम मिल गया था। वे हमीदिया, सुल्तानिया, जयप्रकाश और अब नेहरू अस्पताल में नौकरियां पा चुके थे और उसके या उस जैसों के नाम पर रोटियां तोड़ रहे थे लेकिन उसका नाम वे भी नहीं जानते थे···

भारत भवन मे किसी बड़े जलसे के विरोध में उसे भी एक बैनर पकड़ा दिया गया था···भोपाल गैस त्रासदी ! जश्न मत मनाओ, हमारा मातम मनाओ ! लेकिन भारत भवन वालों ने भी उसे नही पहचाना था। उसने सुना था कि उसका कोई शायर एक लाख रुपये की थैली उसी भवन से उसी जैमों की रहनुमाई करते हुए ले आया था, पर न उसे अपने शायर का नाम मालूम था। न शायर को उसका !

ख़ैर, पैसे की उसे जरूरत नही थी। कभी सरकार दे देती थी, कभी कुछ अमरीका वाले चंदा करके भेज देते थे। लेकिन जो फव्वारे उसके सिर मे फूटते थे और सुलगती हुई चरखियां चलती थी, वे उसे जीने नही दे रही थीं।

और अब तो उसे दवा भी नही मिलती थी। डाक्टरो ने मिलकर उसे पागल करार दे दिया था। लेकिन किसी डाक्टर ने उसके पागल हो जाने का कारण नही बताया था। उस वक्त वह फटी-फटी आंखों से अपने चारागरो को देखता रहा था और एक पल बाद ही सैकड़ों फुलझड़िया उसकी आंखो से छूट पड़ी थी। तब से उसकी जिन्दगी बारहबाट हो गई—

उसी दिन उसे एक बड़ा डाक्टर मिला था। वह मुर्दाघर के पिछवाड़े पीपल के नीचे रहता था। वह अस्पताल से फेंकी हुई टीके की छोटी-छोटी शीशिया जमा करता था और उन्ही से अपने मरीजों का इलाज करता था। जब डाक्टरो ने उसे पागल घोषित कर दिया, तो वह बड़ा डाक्टर खिड़की के पास, बाहर खड़ा हंस रहा था। और जब उसे गैस के मरीजों की लाइन से धक्के मार कर निकाला गया तो इसी बड़े डाक्टर ने उसे बांह से पकड़ा था और अस्पताल के कचरे के ढेर पर बैठा दिया था। वह बड़ा डाक्टर वहीं खिड़की के पास खड़ा बड़बड़ा रहा था—दुःख घोड़े की चाल सरपट आता है और चीटों की चाल जाता है ! दु.ख घोड़े की चाल सरपट आता है···समझा !

वह बड़ा डाक्टर उसे पीपल के नीचे ले गया था। उसका इलाज करने। टीके की पचासों शीशियां उसके पास थी। बड़े डाक्टर ने हवा मे से पर्चा और कलम उठाया, पूछा—

—नाम···उम्र···मोहल्ला···

फिर खुद ही बोला था—कोई बात नहीं···कोई बात नहीं···और तब उसने एक झन्नाटेदार थप्पड़ उसके जड़ दिया था और कटखने बन्दर की तरह चीखा था—कुड़ुम-कुड़ुम की झइयम-झइयम···झइयम-झइयम! अबे साले ठीक से बजा। बहुत देर तक दोनों बैण्ड बजाते रहे थे। फिर बड़ा डाक्टर थककर चूर हो गया था और लेटते हुए बोला था—बेटा! मेहनत कर और दरिया में डाल···। अबे साले देश में रहता है तो परदेसी की तरह रह! कचरा खा और कुत्ते की तरह मर जा! फिर वह बड़ा डाक्टर हंसने लगा था और उससे बोला था—रो···जोर से रो···

उसे रुलाई नहीं आ रही थी पर न जाने क्यों उसकी आंख में आंसू भर आए थे और बड़े डाक्टर ने उसकी आंख की कोर पर टीके वाली शीशी लगाकर उसकी आंख के आंसू निचोड़ लिए थे।

—मैंने तेरे आंसू ले लिए हैं! जांच के बाद तेरी दवा तय करूंगा···। सबकी जांच अदालत में चल रही है···फटे हुए फेफड़ों की दवा अदालत देगी···फूटी हुई आंखों की दवा अदालत देगी···जबलपुर की बड़ी अदालत!··· दुःख घोड़े की चाल सरपट आता है···अपने दुःख का भाव बता! कित्ते रुपये किलो है तेरा दुःख, बोलता क्यों नहीं साले! और बड़े डाक्टर ने हाथ उठाया ही था और इससे पहले कि झन्नाटेदार एक और थप्पड़ उसके पड़ता, वह भाग खड़ा हुआ था। बाजार पहुंच कर उसे राहत मिली थी।

बाजार में अखबार वाला चीख रहा था—भोपाल गैस काण्ड का निपटारा···सुप्रीम कोर्ट से साढ़े सात सौ करोड़ दिलवाया···

और एक आदमी प्लास्टिक की अपनी थैली को गेंद बनाता बोला——साला मटन चालीस रुपये किलो हो गया!

तभी एकाएक कलिया की सोंधी महक ने उसे घेर लिया···चूल्हे पर चढ़ा कलिया और दालचीनी के भीगे जंगलों की तरह महकती उसकी बीवी···दालचीनी के जंगलों की तरह महकता उसका भोपाल ··सब

जीते-जागते थे, जंगल भी, वह भी और उसकी बीवी भी···

उसने फिर दौड लगाई। बड़ा डाक्टर टीके की शीशियां हिला-हिला कर आसुओं की जाच कर रहा था। अभी उसकी जाच-रपट तैयार नही हुई थी।

वहां से वह सेफिया कालिज की तरफ भागा और भागता-भागता जहांगीराबाद पहुचा। इस दौड़ में उसे चार साल लग गये थे। जहांगीराबाद की झोपड़पट्टी में जब वह पहुंचा तो अपनी झोपड़ी का रास्ता उसे नहीं मिला···उसे लगा कि वह अपने घर का रास्ता भी भूल गया है। यह तो कहो अच्छा हुआ कि जब वह बदहवास-सा रास्ता खोजता घूम रहा था तो किसी ने उसकी बाह पकड़ कर पूछा था—

—तू कहां था अब तक ?

उस-किसी ने इतना पूछा ही था कि उसने कसकर उस-किसी को पकड़ लिया था ताकि वह भागने न पाये और उसका नाम बता जाये। उस-किसी ने सवाल फिर दोहराया—

—तू अब तक कहां था ?

—तू मेरा नाम जानता है ?

—नाम ! क्यों मसखरी करता है मुश्ताक !

—मुश्ताक ! मुश्ताक ! मुश्ताक !···यह आवाज सब दिशाओं मे गूजती चली गई···और इसी के साथ उसे रेलगाड़ी की सीटी, रिक्शे-तांगों की आवाज साफ-साफ सुनाई पडने लगी। सब कुछ जैसे नाम लौटने के बाद अपनी जगह लौट आया था। मुश्ताक दर्जी की दुकान में मशीन चलने लगी थी और कपड़े सिलने लगे थे···और उसकी बीवी प्यार से झगड़ने लगी थी—तुम दूसरी औरत का नाप मत लिया करो···मुझे अच्छा नहीं लगता।

—तूने इतनी मेहरबानी की है यार तो मुझे मेरे घर का रास्ता भी बता दे ! मुश्ताक ने उस-किसी से पूछा था।

—तेरा घर। तेरा घर तो अब रहा नही मुश्ताक ! उस-किसी ने कहा।

—क्यों ? मेरी बीवी···और अपने दिमाग पर ज़ोर डालने के बाद

भी जब फौरन मुश्ताक को अपनी बीवी का नाम याद नहीं आया तो, उसने आहिस्ता और शर्मिन्दगी से पूछा—मेरी बीवी का नाम क्या था, यार ?

—क्यों, उसका नाम भी भूल गया ? भूलना ही बेहतर था अच्छा किया ?···

—क्यों ? अच्छा क्या किया ?···खैर, वो बाद में, पहले ज़रा नाम तो याद दिला यार !

—शबनम !

—हां ! हां ! शबनम ! शब्बो···शब्बो···और फिर दूर तक दिशाएं गूंजती चली गईं—शब्बो ! मुश्ताक ! शब्बो ! मुश्ताक···

अपनी लौटी हुई खुशियों के जोश में उसे सब कुछ याद आ गया था। वह सब कुछ पहचान गया था। उसने उस किसी—जिसका नाम उसे अब याद आ गया था, उसी दुल्लन को छाती से लगा लिया था—मेरे दोस्त···मेरे यार···तूने मुझे मेरी सारी दुनिया लौटा दी !···चल, घर तो चल दुल्लन···शब्बो चाय बनाएगी··

—शब्बो अब इधर नहीं है ! दुल्लन ने मायूसी से बताया।

—क्यों ? कहां चली गई ? मायके लौट गई ? मुश्ताक ने पूछा।

—नहीं···वो छज्जा देखता है मुश्ताक ! वो छज्जा जिस पर टीन की छतरी लगी है···वो कबूतरों की छतरी वाला छज्जा नहीं···वो··वो···दुल्लन बता रहा था।

—शब्बो तीन साल से वहीं बैठती है। एक साल तो उसने जैसे-तैसे तेरा इंतजार किया···फिर वहीं उस छज्जे वाले कोठे पर बैठने लगी··क्या करती ! न तू था, न जिन्दगी का कोई वसीला था।

एक भयानक सन्नाटे में मुश्ताक का दिमाग सुन्न-सा रह गया था फिर दालचीनी के जंगल नायलन की साड़ियों की तरह धू-धू करके जल उठे थे।···दिमाग में खून के फव्वारे फूटने लगे थे और आतिशी चर्खियां चलने लगी थीं · आंखें फुलझड़ियों की तरह चिटचिटाने लगी थीं फेफड़े धौंकनी से आग को सुलगाने लगे थे···कानों से गर्म धुएं के बगूले फूटने लगे थे···

मुस्ताक ने चारों तरफ देखा—हल्के-से मुस्कराया और फिर एकदम चीखता हुआ दौड़ पड़ा।

वह जगह-जगह रुकता था ''चीख-चीख कर कहता था—फुल प्लेट चार हज़ार'''हाफ प्लेट पचास हज़ार'''क्वाटर प्लेट चार लाख ! कितना गोश्त हुआ ? ''हिसाब लगाओ'''कितना गोश्त हुआ'''

और वह फिर दौड़ पड़ता था। कहां, उसे खुद पता नहीं था। फिर कहीं रुककर वह चीखता था—हिसाब लगाओ ! घटाओ, जोड़ो''' तकसीम करो'''सात अरब पचास करोड़ ! पैसों का पहाड़ ! श्यामला हिल्स नहीं'''अमरीकी पैसों का पहाड़'''फुल प्लेट चार हज़ार'''हाफ प्लेट पचास हज़ार'''क्वाटर प्लेट चार लाख ! कितना गोश्त हुआ ? हिसाब लगाओ'''जोड़ो घटाओ'''

हमीदिया अस्पताल के गेट पर पहुंचकर मुस्ताक लगभग भाषण-सा देने लगा था—

—सबकी जांच अदालत में चल रही है'''मैथिली आइसो साइनाइट गैस'''एम० आई० सी० हवा में बह रही है'''फटे हुए फेफड़ों की दवा अदालत देगी ! फूटी हुई आंखों की दवा अदालत देगी ! जानता है—दुःख घोड़े की तरह सरपट आता है ! भोपाल गैस काण्ड का निपटारा''' अमरीकी पैसों का पहाड़ ''दालचीनी के जंगल जल रहे हैं—पता है तुम्हें ? मटन चालीस रुपये किलो ! खरीदा तुमने'''मस्ती करो बेटा''' मटन चालीस रुपये किलो'''लाके देखो यारो ! सात अरब पचास करोड़ रुपयों का पहाड़'''फुल प्लेट चार हज़ार जो टूट गई हैं, हाफ प्लेट पचास हज़ार जो चटक गई हैं, क्वाटर प्लेट चार लाख जो गैस की चपेट में पड़ी हैं'''जोड़ो, घटाओ, तकसीम करो और हिसाब लगाओ'''फिर हासिल बताओ'''वो बुत देखा है सालो तुमने'''जो कहता है—हमें न हिरोशिमा चाहिए न भोपाल'''हमें सिर्फ ज़िन्दा रहने दो ''यह उनकी याद में है सालो जो गैस काण्ड में दो और तीन दिसम्बर की रात सन चौरासी में मर गए या मार डाले गये'''फुल प्लेट चार हज़ार'''हाफ प्लेट पचास हज़ार, क्वार्टर प्लेट चार लाख ! '''हा ! हा ! हा ! अमरीकी कम्पनी यूनियन कार्बाइड का कमाल ! '''ये साले अपनी गैसों की तासीर हम पर आज़मा

रहे है'''जंगल कट रहे हैं'''इंसान कटे पेड़ों की तरह मुर्दों में बदल रहे हैं'''गोश्त ही गोश्त'''जिन्दा गोश्त, मुर्दा गोश्त'''मरता हुआ गोश्त !''' गोश्त की मण्डी खुल गई है यारो—गोश्त की मण्डी'''मुर्दा गोश्त की मण्डी, जिन्दा गोश्त की मण्डी'''एक बुत अपनी कहानी कहता खड़ा है''' दूसरा बुत बिस्तर में पड़ा है'''दालचीनी के जंगल देखे हैं सालो ! औरत का जिस्म बीस रुपये रात—लगाया हिसाब, जोड़ा घटाया, भाग दिया, क्या हिसाब पड़ा ? बताओ न, बहुत हिसाब आता है तुम्हें—औरत का जिस्म बीस रुपये रात'''मटन चालीस रुपये किलो और इंसान का गोश्त ग्यारह रुपये किलो'''

इसी समय मुश्ताक के एक जन्नाटेदार झापड़ पड़ा। तमाशबीन देखकर हंस पड़े—बड़ा डाक्टर मुश्ताक को पकड़कर ले गया था, वही पीपल के नीचे'''जहां उसकी टीके वाली शीशियां रखी थीं। मुश्ताक वहीं बैठ गया। हंसता हुआ। तभी बड़े डाक्टर ने पूछा—क्या बक रहा था वहां ?

मुश्ताक ने उसे देखा फिर बड़बड़ाया—पैसों का पहाड़ ! औरत का जिस्म बीस रुपये रात'''मटन चालीस रुपये किलो ! इंसान का गोश्त ग्यारह रुपये किलो'''

—कित्ते रुपये किलो है तेरा दुःख, बताता क्यों नहीं साले ! बड़ा डाक्टर चिल्लाया था, फिर शीशी हिलाते हुए बोला था—जांच के बाद तेरी दवा तय करूंगा ! कुड़ुम-कुड़ुम की झइयम-झइयम ! कुड़ुम-कुड़ुम की झइयम-झइयम'''

और फिर बड़े उत्साह से दोनों बैंड बजाते रहे थे।

स्टोरी

फोन खराब था। मुझे टेलेक्स से मैसिज मिला। मामला सामूहिक बलात्कार का था। मुझे स्टोरी करनी थी। पड़रिया में हुए सामूहिक बलात्कार की स्टोरी एक लोकल साप्ताहिक ने छाप दी थी। मुझे ऐसी स्टोरी करने में मज़ा भी नहीं आता था और न मेरी दिलचस्पी थी। बलात्कार की ऐसी स्टोरियां आए दिन आती रहती हैं। इन लोकल अखबारों के कारण नेशनल महत्व की स्टोरियों की कोई कीमत नहीं रह जाती। वे दब जाती हैं और हाहाकार मचाती बेमतलब स्टोरियां महत्वपूर्ण बन जाती हैं। और फिर इस तरह की घटनाओं में रखा ही क्या है—जब गाय या भैंसों के झुण्ड के झुण्ड चरने जाते हैं तो क्या कोई रिपोर्ट करता है कि कितनी गायों या भैंसों के साथ बलात्कार हुआ? कितनी भेड़ों ने आज फरियाद की है?

मैं कॉफी हाउस में चला गया। कॉफी पी ही रहा था कि सरकारी सूचना विभाग के नंदा ने खबर दी—सर! एक जबरदस्त स्टोरी है···

···कहां?

—कहिए तो बुला दूं! नंदा ने उसे इशारे से बुलाया।

और वो मरियल-सा फोटोग्राफर बगल वाली कुर्सी पर आकर बैठ गया। बड़े रहस्यमय तरीके से उसने मुझे देखा। कैमरे वाला बैग वह गोद में दबाए बैठा था, कुछ इस तरह कि उसकी स्टोरी चोरी न चली जाए। मैंने कॉफी का आर्डर दिया।

नंदा ने कहा—बताओ!

मैंने उत्सुकता से उस मरियल फोटोग्राफर की तरफ देखा। वो कोई जानदार आदमी नहीं लग रहा था। आजकल नेशनल प्रेस के फोटोग्राफरों

का हलवा ही दूसरा है। ये लोकल फोटोग्राफर भी अब अपनी पुश्तनी दुकानों पर किसी को बैठा कर, कैमरे लटकाकर निकल पड़े हैं और बेमतलब की कोई-न-कोई स्टोरी लिए घूमते हैं। उन्हीं लोकल लोगों की, जिन्हें न कोई जानता है न पहचानता है। लेकिन खैर···इन लोकी-लोगों से मिलना और एक प्याला कॉफी पिला कर इनकी स्टोरी सुनना महंगा नहीं लगता।

ब्यूरो से चलते हुए मैंने वाइफ को फोन कर दिया था। वो मेरी आदत जानती थी और खुद भी खयाल रखती थी। वह जानती थी कि किसी स्टोरी के लिए बाहर जाने से पहले मैं कॉफी हाउस में आकर एक प्याला कॉफी जरूर पीता हूं···वो ये भी जानती है कि लोकल स्टोरी के लिए कभी-कभी बहुत बेहूदे और अनहाइजीनिक इलाकों में जाना पड़ता है, इसलिए वो खासतौर से मेरा पीने का पानी जरूर भिजवा देती है। उसने यही किया था। नौकर मेरा बैग लेकर आ गया था। मैं जानता था, उसमें पीने का पानी होगा, सैंडविचेज होंगे, टावल और सौंफ, इलायची का डिब्बा होगा। कभी-कभी तो लोकल जगहों पर इतनी गदगी होती है कि मन मिचलाने लगता है···तब ये डिब्बा काम आता है। आज तो उसने यूडी-कोलोन की एक शीशी भी रख दी थी—जगह का नाम पड़रिया सुनते ही वह समझ गई होगी कि इस नाम की जगह या गांव कितना बेहूदा हो सकता है। ज्यादातर तो नाम ही समझ में नहीं आते। गांव-देहात के नाम तो छोड़िए···औरतों-आदमियों के नाम तक इतने अजीब होते हैं कि बार-बार सुनकर ही उन्हें लिखा जा सकता है, फिर भी वे बहुत बार गलत हो जाते हैं· इन लोगों को नाम से पहचाना ही जाए, यह जरूरी भी नहीं। नाम से ज्यादा स्टोरी की जरूरत होती है। कभी-कभी स्टोरी इसलिए भी कच्ची रह जाती है क्योंकि उनकी भाषा भी समझ में नहीं आती और तब कोई थोड़ा-बहुत पढ़ा-लिखा लोकी काम आ जाता है, वह स्टोरी के भीतर की स्टोरी बता देता है। स्टोरी तो मिल जाती है पर मजा नहीं आता। इससे नेशनल डेलीज़ की इमेज पर असर पड़ता है और फाइल की हुई स्टोरी एक्सक्लूसिव न रहकर करीब-करीब एजेंसी की स्टोरी बन जाती है। इस हलकी-सी झुंझलाहट को मैंने सामने खड़े नौकर पर उतार दिया—खड़ा क्यों है···? जाता क्यों नहीं!

—वो साब, वो मेम साब ने कहा है···पड़रिया जाते हैं साब तो मामा जी से मिलते आएं। नौकर ने कहा।

—ठीक है, ठीक है···तुम जाओ···और मुझे याद आया कि हां, पड़रिया के डिस्ट्रिक्ट हेड क्वार्टर्स मे शकुन के मामा जी मजिस्ट्रेट है।

· एक कॉफी और सर ! नंदा ने पूछा तो मैं फिर उनकी ओर मुखातिब हुआ। मैं भूल ही गया था कि वो मरियल-सा लोकी फोटोग्राफर अपनी स्टोरी लिए बैठा था।

तभी नंदा ने रहस्यमय ढग से बताना शुरू किया—सर ! इनका नाम तिनसुखिया सिंह है। ये वनमंत्री के परिवार के फैमिली फोटोग्राफर रहे हैं ···दसियों साल से फोटो खींचते हैं···अब उन्हीं की एक जबरदस्त स्टोरी है इनके पास···मय फोटोज के।···बताओ, सर को···नंदा ने उस मरियल लोकी से कहा।

उस लोकी फोटोग्राफर की आंखों में चमक आ गई पर वह मुझसे कुछ घबराया हुआ-सा था। नेशनल डेली का ब्यूरो-चीफ होने के कारण मेरा रोब तो था ही, शायद इसीलिए वह लोकी झिझक रहा था।

—पहले पैसा तय कर लीजिए। उस बदतमीज लोकी ने कहा - मैंने स्टोरी सुना दी तो ये सुनकर लिख देंगे···

—बास्टर्ड ! मेरे मुंह से धमाकेदार शब्द सुनकर नंदा उस मरियल को उठा ले गया। वे दोनों बाहर जाकर खड़े हो गए।

मैं गाड़ी लेकर पड़रिया की तरफ निकल पड़ा। देवघर तक रास्ता अच्छा था। मन्दिरों का शहर देवघर···वैसे भी कंट्री साइड मे जाकर अच्छा लगता है। बहुत डिफरेंट है सारा सीन···फैसीनेटिंग ! अगर यहां सिर्फ नेचर होती और इन कीड़ों-मकोड़ों ने इतनी गरीबी न पैदा की होती तो ये इलाके कितने ब्यूटीफुल होते···गरीबी-ही-गरीबी को पैदा करती है।

— आप रोंग है साब ! पंचानन बोला।

असल मे देवघर से पड़रिया का रास्ता बताने के लिए मैंने एक लड़के को देवघर से पकड़ लिया था। वह मेरे साथ गाड़ी में बैठा हुआ था—उसी का नाम पंचानन था।

—कैसे ? मैं गाड़ी चलाता जा रहा था।

—अगर अमीरी ज्यादा अमीर न होती जाए तो गरीबी गरीब नही रहेगी ! पचानन बोला था। उसकी हिन्दी मुझे अच्छी लगी थी।

—कहां तक पढे हो ?

—एम० ए० पॉलिटिकल साइंस !

—ओह ! मेरे मुंह से निकला। लेकिन देवघर के इस लड़के को देखकर मुझे उसकी बात झूठी लगी। ये लड़का मुझे तूतिया समझ रहा था—ये तूतिया शब्द मेरे और शकुन के बीच का बहुत प्राइवेट शब्द था। हम जब भी कभी पार्टियों या डिनर पर जाते और किसी पर कमेंट पास करना होता तो शकुन लगभग मेरे कान के पास लिपटते हुए यही कहती थी—तूतिया ! और हम दोनो बेसाख्ता हंस पड़ते थे।

एक बार डिप्टी मिनिस्टर ने यह शब्द सुन लिया था और शकुन के पीछे ही पड़ गया था—क्या कहा आपने ? क्या कहा आप ने ? तो मैंने उस डिप्टी मिनिस्टर को डांट दिया था—शी इज माई वाइफ···ह्वाई यू आर हैरेसिंग हर···हम आपस में कुछ भी कहें···दैट्स अवर प्राइवेट मामला !

वैसे शकुन ने उसी डिप्टी मिनिस्टर को तूतिया कहा था। गर्मागर्मी में मामला बढ़ गया था और एक लम्बी बहस फ्रीडम आफ एक्सप्रेशन और फ्रीडम आफ स्पीच पर शुरू हो गई थी—मेरे जैसे सभी साथियों ने हमारा साथ दिया था और डिप्टी मिनिस्टर दुम दबाकर भाग गया था।

तब शकुन ने खुलेआम कहा था—तूतिया !

और सब हंस पड़े थे। बड़े जोर का ठहाका लगा था।

पंचानन हंस रहा था—क्यो आपको विश्वास नही होता ?

मैंने उसे शक से छोटा होना मंजूर नहीं किया। बात चलाने के लिए पूछा—मिस्टर पंचानन, पॉलिटिकल साइंस ! आप करते क्या हैं ?

—आप अब भी मेरी बात पर विश्वास नही कर रहे हैं। कहते हुए पंचानन ने अपनी मैली-कुचैली पेंट की जेब से एक मुड़ा-तुड़ा कागज निकाला। मुझे दिखाते हुए बोला—

—ये देखिए ! पॉलिटिकल साइंस एम० ए० की डिग्री। पटना यूनिवर्सिटी ! मैं अपने डिग्री सर्टीफिकेट की अटेस्टेड कापी हमेशा जेब में

रखता है। पंचानन ने कुछ गर्मी से कहा—हमें आप लोग पढ़ा-लिखा समझते ही नहीं···

मुझे प्यास लग रही थी। पर मैं अपना पानी बरबाद नहीं करना चाहता था···पता नहीं कितने पानी की जरूरत पड़ जाए···खुद पानी पीना और पंचानन से न पूछना असभ्यता होती। मैं कोई ऐसी जगह तलाश रहा था जहां पानी का हैण्डपम्प वगैरह दिख जाए तो मैं वहीं गाड़ी रोक लूं। प्यास तो पंचानन को भी लग रही होगी···गर्मी तो थी ही और गर्मी में किसे प्यास नहीं लगती! आखिर दूर पर एक हैण्डपम्प नज़र आया। मैं गाड़ी साइड पर लेने लगा कि एक बहुत बड़े हादसे से बच गया। एक आदमी सड़क की किनारी का तकिया बनाए घने पेड़ की छांव में लेटा हुआ था, वह दबते-दबते बच गया। गाड़ी को झटका लगा, पर मैंने बचाकर काट ली। लेकिन मैं इस हादसे से चीख पड़ा था—कमबख्त! यहां लेटा है···अभी मरवा देता। यहां मरने के लिए लेट गया···साला···

—साला नहीं बेचारा! पंचानन बोला। उसकी हिन्दी मुझे वाकई अच्छी लग रही थी।

—बेचारा कैसे? मैंने हैण्डपम्प के पास गाड़ी रोककर पूछा।

—ये अगर आपकी गाड़ी से दबकर मर भी जाता या घायल हो जाता, तब भी कहीं आपकी शिकायत करने नहीं जाता। पंचानन बहुत आसानी से कह गया।

—लेकिन यह खतरनाक है! आखिर ये लोग सड़क पर इस तरह लेटते क्यों हैं? यह लेटने की जगह है क्या? मैंने तुर्शी से कहा तो भी पंचानन ने उसी आसानी से जवाब दिया—इसलिए लेटते हैं कि घर-झोंपड़ी में इतनी साफ जगह नहीं है···खेत किनारे थकते हैं तो सड़क पास पड़ती है···घर दूर! और फिर गांव के पेड़ों में छाया भी तो नहीं है···इन सरकारी पेड़ों में घनी छाया है! पंचानन बोला—

यहां दरख्तों के साये में धूप लगती है···
चलो, यहां से चलें और उम्र भर के लिए!

—ये लाइनें तुमने लिखी हैं? लाइनें मुझे अच्छी लगी थीं।

—नहीं ··लेकिन तेरे जैसे ही एक आदमी ने, जिसे लोग कवि कहते

हैं…कवि दुष्यंत कुमार ने ! काश ! आप दुष्यंत होते ! वह बोला तो मुझे एकाएक शकुन का खयाल आ गया। शकुन ! शकुन्तला…कभी जब वो बहुत ही रोमेण्टिक मूड में होती थी, तो कहती थी—काश ! तुम दुष्यत होते !

लेकिन दोनों के शब्द एक होते हुए भी पंचानन के शब्दों ने मुझे भीतर तक तिलमिला दिया था…कितने कटखने हैं ये लोग…कल्चर…लिटरेचर और ट्रेडीशन से कितने दूर…

पचानन की हिन्दी मुझे सचमुच अच्छी लग रही थी लेकिन उसकी हिन्दी में स्लैंट कुछ दूसरा था…वह स्लेंट मेरी समझ में नहीं आ रहा था …पर कुछ चुभता जरूर था।

आखिर मैंने उससे पूछ ही लिया—तुम पढ़े-लिखे बेकार नौजवान हो ?

—जी नहीं…मैं पत्रकार हूं ! पेट तो कुत्ते भी भर लेते हैं…मैं भी भर लेता हूं…पत्रकारिता मैं इसलिए करता हूं…क्योंकि हमारी भूख सदियों की भूख है…कहकर उसने मुझे देखा।

वह हवाई बातें करने लगा था। मैंने गाड़ी स्लो की…नदी आ गई थी। मैंने पूछा—यह कौन-सी नदी है ?

—अजय नदी ! इसी पर पुनासी बांध बन रहा है और यह पुनासी बांध एक रोज़ पड़रिया गांव को लील जाएगा ! फिर यहां कोई शिकायत करने वाला नहीं होगा…न दरिया देवी, न निमिया, न भगवतिया…

वह बोल ही रहा था कि मुझे फिर शकुन की वह बात याद आ गई थी जिसे लेकर हम दोनों बहुत हंसे थे और वह बात हमारे बिस्तर की बड़ी इंटीमेट जोक बन गई थी। असल में हमारी एक नौकरानी थी—उसका नाम भी भगवतिया था। शकुन मुझसे बेहतर हिन्दी जानती थी। एक दिन मैंने उससे पूछा था—इस भगवतिया नाम का मीनिंग क्या होता है ? कुछ होता है क्या ?

होता है ! शकुन ने बहुत शोखी से देखते हुए कहा था—भगवतिया का मतलब है—बड़ी भग वाली। फिर शकुन ने मुझे और अर्थ भी बता दिए थे और उस दिन के बाद जब भी भगवतिया काम करने आती तो हम

उसके बेढंगे कूल्हे और झुककर झाड़ू लगाते वक्त उसे कभी-कभी पीछे से देखा करते थे···और एक पाइंट पर आकर साथ-साथ हंस पड़ते थे···तब से यह जोक हमारे बेडरूम में पहुंच गया था। शकुन भी इस जोक को बहुत एन्ज्वाय करती थी। हमें भगवतिया जैसी बेढंगी और बेसलीका औरतों पर तरस भी आता था। काश! थोड़ी-सी कल्चर इन्हें मिल जाती।

हम पड़रिया पहुंच गए थे। मैं चाहता था कि पंचानन अब मेरा साथ छोड़ दे। वह भी तो लोकी ही था और ऊपर से पत्रकार! पड़रिया के लोग मुझे अजीब तरह से देख रहे थे···मुझे यह कुछ अच्छा नहीं लगा। मैंने पंचानन से कहा—ये लोग इस तरह क्यों देख रहे हैं?

—क्योंकि ये असली भारतीय हैं।

—असली और नकली क्या···मैं···मैं भी तो भारतीय हूं!

—आप भारतीय होंगे···आप भारतीय हैं लेकिन आप इनके भारतीय नहीं हैं। पंचानन बोला, तो मुझे उसकी हिन्दी फिर अच्छी लगी···लेकिन बात हवाई ही लगी। मैंने इधर-उधर देखा—गांव में गांव जैसा कुछ था ही नहीं···कुछ भी नहीं। सदियों से चली आती फोक कल्चर का टच तक नहीं···मधुबनी कला या अपनी लोकल कला का एक हाथी भी दीवार पर नहीं·· और फिर सामूहिक बलात्कार का कोई निशान भी कहीं नहीं! आखिर स्टोरी तो लिखनी ही थी। पंचानन को मदद देना ज़रूरी लगा। मैंने उसे साथ ही ले लिया। वक्त तो ज्यादा लगाना नहीं था। बोतलों में काफी पानी था। ज़रूरत पड़ने पर मैं अब पंचानन को भी दस-पांच घूंट पिला सकता था। मैंने उसे साथ ही रखा—और क्या करता। नेशनल डेलीज़ की अपनी जिम्मेदारियां हैं।

—पंचानन! मुझे रेप विक्टिम्स से मिलवाओ दोस्त! मैं उनसे बात करना चाहूंगा।

तब तक गांव का एक जिम्मेदार-सा आदमी चार-पांच लोगों के साथ आ गया। उसके हाथ में पुलिस रिपोर्ट की कापी थी। वह पंचानन से बोला—पंचानन बबुआ···इन लोग का जरा ये रपट पढ़ के सुना देईं···ई हम पर भरोसा नाही करते हैं···तुम तो पढ़ा-लिखा आदमी है···आपन

पढ़ाई का कागज जेब में राखत हौ, क इनका दिखाय दे बबुआ···औ यह रपट पढ दे जरा··· लो देखो पटना का कागज-पढाई का ! अब तो मानोगे न···पटना तक पढ़ा बबुआ गलत नहीं पढ़ेगा···हां···

वह जिम्मेदार-सा आदमी पंचानन को पहचानता था। और पंचानन अपनी डिग्री का सर्टिफिकेट झण्डे की तरह उन चार-पांच लोगों को दिखा रहा था।···

मेरी नजर फिर पड़ी तो मैंने इस बार सर्टीफिकेट की अटैस्टेड कापी फिर देखनी चाही। ये लोग जाली सर्टीफिकेट भी खरीद लेते हैं। उसकी डिग्री का वह सर्टीफिकेट जेन्युन ही लगा। और नीचे कोने में 'ट्रू-कापी' के नीचे जो दस्तखत थे···उन्हें भी मैंने कुछ-कुछ पहचाना···वे शकुन के मामा जी के दस्तखत थे—रबर स्टाम्प से तो पूरी तरह और भी जाहिर हो गया था।

पंचानन ने पुलिस में दर्ज कराई गई उस रिपोर्ट को पढ़कर उन लोगों को सुना दिया। वे जानना चाहते थे कि उनकी औरतों के रेप की पूरी और सच्ची रिपोर्ट दर्ज की गई थी या नहीं।

मैंने भी जल्दी-जल्दी जरूरी पाइंट्स नोट कर लिए थे। जिनकी औरतें रेप हुई थी, उनके चेहरों पर कोई खास तनाव या शर्म नहीं थी। मुझे लगा कि ये काफी बेशर्म लोग है।

खैर ''अब हम आगे बढ़ गए। पंचानन ने वे औरतें दिखाई···देखकर मैंने फ्रस्टेटेड फील किया—ये गंदी···मैली-कुचैली और बदसूरत औरतें! दांत निकले हुए···आंखे टेढ़ी-कानी···पेट सेंड बैग्स की तरह हिलते हुए···छातियां मरे हुए चूहों की तरह लटकती हुईं।

—इन्हें कोई क्या रेप करेगा ! मैंने कड़वेपन से पंचानन से कहा।

—इनके शरीर मत देखिए···यह बदला इनके शरीर से नहीं, इनकी औकात और गरीबी से लिया जाता है···गरीबों में भी सबसे गरीब घर की औरत होती है ! उसे ही यह कीमत चुकानी पड़ती है···इसे आप नहीं समझ सकते ! पंचानन का चेहरा इस बार कुछ तमतमा आया था। वही लोकी अखबारों और पत्रकारों की तरह।

खैर, मुझे तो अपना काम निकालना था। मैंने अपनी भलमनसाहत

और कल्चर अपने पास रखी और धीरज से बोला—दोस्त पंचानन !

—जी !

—भगवतिया से तो मिलवाओ ! मैंने कहा तो शकुन की बात मुझे फिर याद आ गई और हल्की मुस्कराहट-सी भी। मैं इस भगवतिया को भी देखना चाहता था।

—जी आइए···पंचानन ने कहा और हम आगे बढ़ गए। बीच में मेरे मन की शंका फिर उभरी और चलते हुए मैंने पंचानन से पूछ ही लिया —क्यों पंचानन ··तुम्हें गैंग रेप का मामला फेक नहीं लगता ? पुलिस वाले इन औरतों को क्यों रेप करेंगे ?

—औरतों की इज्जत उतर गई और आपको यह इतना बड़ा हादसा फेक लगता है ?

—सोचो ज़रा···क्या कोई सब-इंस्पेक्टर, दरोगा अपने सिपाहियों के सामने अपनी पेंट खोल सकता है ? मैंने थोड़ी तल्खी से कहा।

—सिपाहियों के सामने औरत की धोती तो खोल सकता है। पंचानन की आवाज़ में अब बहुत तुर्शी थी। मैं थोड़ा चुप ही रहा।

हम भगवतिया की झोपड़ी पर पहुंच गए थे।

पंचानन ने आवाज़ लगाई तो एक औरत की 'हूं' की आवाज़ आई, पर वो सामने नहीं आई···मैं इस भगवतिया को देखना तो जरूर ही चाहता था। शकुन को कुछ मजेदार बताने के लिए···इसी तरह की मामूली बातों से हमारी ज़िंदगी के कुछ खूबसूरत जोक्स बनते रहते हैं।

—उसे बाहर तो बुलाओ···तभी तो बात कर पाऊंगा। मैंने पंचानन से कहा। वह झोपड़ी के दरवाजे के पास से लौटकर मेरे सामने खड़ा हो गया था।

—वो बाहर नहीं आएगी। उसकी धोती रिपोर्ट दर्ज कराने के बाद योनि-द्रव और शुक्राणुओं की तहकीकात करने के लिए ले ली गई है।

—मतलब !

—नहीं समझे ! आप अंग्रेजी तो जानते हैं। बलात्कार-रेप के समय सीमन कपड़ों पर भी लग जाता है···उसी के लिए भगवतिया की धोती फारेंसिक जाच के लिए भेज दी गई है। पंचानन ने बात साफ की।

—ठीक है ! पर उससे बोलो···सामने आकर अपनी स्टोरी तो ज़रा बताए ! मैंने कहा।

—वो बाहर नहीं आएगी···मैंने आपको बताया है न। अब पंचानन चिढ़कर बोल रहा था।

—क्यों ?

—क्यों ! पंचानन एक बदतमीज और जंगली आदमी की तरह चीख पड़ा था···मन में तो आया कि एक जोर का झापड उसे मार ही दू और शराफत से बात करना सिखा दू। पर अपनी स्टोरी के लिए खुद पर काबू करते हुए मैंने धीमी पर सख्त आवाज़ में कहा—हां ! आखिर उसने रिपोर्ट लिखाई है कि उसका रेप हुआ है···तुमने खुद पढ़कर सुनाई थी···तब वह अपनी स्टोरी बताने बाहर क्यों नहीं आ सकती ?···आखिर किस बात की शर्म है अब ? मैंने थोड़ा कुरेदने के अंदाज में कहा।

और वह लोकी पत्रकार···दैट बास्टर्ड पंचानन पागलों की तरह चीखने लगा—शर्म ! शर्म तो तुम्हें आनी चाहिए·· शर्म की बात तो यह है···

मुझे लगा कि उसने दांत पीस कर मेरे लिए 'तूतिया' शब्द का इस्ते-माल किया था···और वह चीखे जा रहा था—शर्म की बात तो यह है कि उसकी एक ही धोती थी और वह धोती जांच के लिए गई है···भगवतिया नंगी है। नंगी ! नंगी समझते हो—नेकेड ! ···अगर भगवतिया बेशर्म होकर बाहर निकल आएगी तो बाबू···तुम्हारी···तुम्हारी दुनिया की इज्जत धूल मे मिल जाएगी···सबकी इज्जत नगी हो जाएगी !

और ज्यादा बर्दाश्त करना मुश्किल था। पचानन फिर हवाई बातें करने लगा था। जिसका कोई सिर-पैर नहीं था। और मेरी स्टोरी करीब-करीब हो ही गई थी।···मालूम तो सब पड़ ही गया था।

मैं पंचानन को वहीं छोड़कर शहर लौट आया।

चप्पल

कहानी बहुत छोटी-सी है।

मुझे आल इंडिया मेडिकल इंस्टीट्यूट की सातवीं मंजिल पर जाना था। आई० सी० यू० में। गाड़ी पार्क करके चला तो मन बहुत ही दार्शनिक हो उठा था। कितना दुःख और कष्ट है इस दुनिया में…लगातार एक लड़ाई मृत्यु से चल रही है और उस दुःख और कष्ट को सहते हुए लोग—सब एक से हैं। दर्द और यातना तो दर्द और यातना ही है—चाहे वह किसी की हो। इसमें इंसान और इंसान के बीच भेद नहीं किया जा सकता। दुनिया में हर मां के दूध का रंग एक है। खून और आंसुओं का रंग भी एक है। दूध, खून और आंसुओं का रंग नहीं बदला जा सकता …शायद उसी तरह दुःख, कष्ट और यातना के रंगों का भी बंटवारा नहीं किया जा सकता। इस विराट मानवीय दर्शन से मुझे राहत मिली थी… मेरे भीतर से सदियां बोलने लगी थीं। एक पुरानी सभ्यता का वारिस होने के नाते यह मानसिक सुविधा जरूर है कि तुम हर बात, घटना या दुर्घटना का कोई दार्शनिक उत्तर खोज सकते हो। समाधान चाहे न मिले, पर एक अमूर्त दार्शनिक उत्तर जरूर मिल जाता है।

और फिर पुरानी सभ्यताओं की यह खूबी भी है कि उनकी परम्परा से चली आती संतानों को एक आत्मा नाम की अमूर्त शक्ति भी मिल गई है—और सदियों पुरानी सभ्यता मनुष्य के क्षुद्र विकारों का शमन करती रहती है…एक दार्शनिक दृष्टि से जीवन की क्षण-भंगुरता का एहसास कराते हुए सारी विषमताओं को समतल करती रहती है…

मुझे अपने उस मित्र की बातें याद आईं जिसने मुझे संध्या के संगीन आपरेशन की बात बताई थी और उसे देख आने की सलाह दी थी। उसी

ने मुझे आई० सी० यू० में सन्ध्या के केबिन का पता बताया था—आठवें फ्लोर पर आपरेशन थियेटर्स हैं और सातवें पर संध्या का आई० सी० यू० मेजर आपरेशन में सन्ध्या की बड़ी आंत काट कर निकाल दी गई थी और अगले अड़तालीस घंटे क्रिटिकल थे···

रास्ता इमरजेंसी वार्ड से जाता था। एक बेहद दर्द भरी चीख इमरजेंसी वार्ड से आ रही थी···वह दर्द भरी चीख तो दर्द भरी चीख ही थी—कोई घायल मरीज़ असह्य तकलीफ से चीख रहा था। उस चीख से आत्मा दहल रही थी···दर्द की चीख और दर्द की चीख में क्या अंतर था! दूध, खून और आंसुओं के रंगों की तरह चीख की तकलीफ भी तो एक-सी थी। उसमें विषमता कहां थी?···

मेरा वह मित्र जिसने मुझे संध्या को देख आने की फर्ज़ अदायगी के लिए भेजा था, वह भी इलाहाबाद का ही था। वह भी उसी सदियों पुरानी सभ्यता का वारिस था। ठेठ इलाहाबादी मौज में वह भी दार्शनिक की तरह बोला था—अपना क्या है? रिटायर होने के बाद गंगा किनारे एक झोपड़ी डाल लेंगे। आठ-दस ताड़ के पेड़ लगा लेंगे···मछली मारने की एक बंसी···दो-चार मछली तो दोपहर तक हाथ आयेंगी ही···रात भर जो ताड़ी टपकेगी उसे फ्रिज में रख लेंगे···

—फ्रिज में?

और क्या···माडर्न साधू की तरह रहेंगे! मछलियां तलेंगे खायेंगे और ताड़ी पीयेंगे···और क्या चाहिए···पेंशन मिलती रहेगी। और माया-मोह क्यों पालें? पालेंगे तो प्राण अटके रहेंगे···ताड़ी और मछली···बस, आत्मा ताड़ी पीकर, मछली खाके आराम से महाप्रस्थान जाएगी···न कोई दुःख, न कोई कष्ट···लेकिन तुम जाके संध्या को देख जरूर आना···वो क्रिटिकल है···

मेरा मित्र अपने भविष्य के बारे में कितना निश्चित था, यह देखकर मुझे अच्छा लगा था।

यह बात सोच-सोच कर मुझे अभी तक अच्छा लग रहा था, सिवा उस चीख के जो इमरजेंसी वार्ड से अब तक आ रही थी···और मुझे सता

रही थी…इसीलिए लिफ्ट के आने में जो देरी लग रही थी वह मुझे खल रही थी।

आखिर लिफ्ट आई। सेवेन—सात, मैंने कहा और संध्या के बारे में सोचने लगा। दो-तीन वार्ड ब्वाय तीसरी और चौथी मंजिल पर उतर गए।

पांचवीं मंजिल पर लिफ्ट रुकी तो कुछ लोग ऊपर जाने के लिए इंतजार कर रहे थे। इन्हीं लोगों में था वह पांच साल का बच्चा—*अस्पताल की धारीदार बहुत बड़ी-सी कमीज पहने हुए*…शायद उसका बाप, वह जरूर ही उसका बाप होगा, उसे गोद में उठाए हुए था…उस बच्चे के पैरों में छोटी-छोटी नीली हवाई चप्पलें थीं, जो गोद में होने के कारण उसके छोटे-छोटे पैरों में उलझी हुई थीं।

अपने पैरों से गिरती हुई चप्पलों को धीरे से उलझाते हुए बच्चा बोला—"बाबा! चप्पल…"

उसके बाप ने चप्पलें उसके पैरों में ठीक कर दीं। वार्ड बॉय ह्वील-चेयर बढ़ाते हुए बोला—आ जा, इसमें बैठेगा! बच्चा हलके से हंसा…वार्ड बॉय ने उसे कुर्सी में बैठा दिया…उसे बैठने में कुछ तकलीफ हुई पर वह कुर्सी के हत्थे पर अपने नन्हें-नन्हें हाथ पटकता हुआ भी हंसता रहा। दर्द का एहसास तो उसे भी था पर दर्द के कारण का एहसास उसे बिलकुल नहीं था। वह कुर्सी में ऐसे बैठा था जैसे सिंहासन पर बैठा हो…कुर्सी बड़ी थी और वह छोटा। वार्ड बॉय ने कुर्सी को पुश किया। वह लिफ्ट में आ गया। उसके साथ ही उसका बाप भी। उसका बाप उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरता रहा।

लिफ्ट सात पर रुका, पर मैं नहीं निकला। दो-एक लोग निकल गए। लिफ्ट आठ पर रुका। यहीं आपरेशन थियेटर थे। दरवाजा खुला तो एक नर्स जिसके हाथ में सब पर्चे थे, उसे देखते हुए बोली—आ गया तू!

उस बच्चे ने धीरे से मुस्कराते हुए नर्स से जैसे—हां! उसकी आंखें नर्स से शर्मा रही थीं और उनमें बचपन की बड़ी मासूम दूधिया चमक थी। *ह्वील-चेयर एक झटके के साथ लिफ्ट से बाहर गई*…नर्स ने उसका कंधा हलके से थपका…

—बाबा! चप्पल वह तभी बोला—मेरी चप्पल…

उसकी एक चप्पल लिफ्ट के पास गिर गई थी। उसके बाप ने वह चप्पल भी उसे पहना दी। उसने दोनों पैरों की उंगलियों को सिकोड़ा और अपनी चप्पलें पैरों में कस ली।

लिफ्ट बंद हुआ और नीचे उतर गया।

वार्ड बॉय बच्चे की कुर्सी को पुश करता हुआ आपरेशन थियेटर वाले बरामदे में मुड़ गया। नर्स उसके साथ ही चली गई। उसका बाप धीरे-धीरे उन्हीं के पीछे चला गया।

तब मुझे याद आया कि मुझे तो सातवीं मंजिल पर जाना था। संध्या वहीं थी। मैं सीढ़ियों से एक मंजिल उतर आया। संध्या के डाक्टर पति ने मुझे पहचाना और आगे बढ़ कर मुझसे हाथ मिलाया। हाथ की पकड़ में मायूसी और लाचारी थी। कुछ पल खामोशी रही। फिर मैंने कहा—

—मैं कल ही वापस आया। तभी पता चला। यह एकाएक कैसे हो गया ?

—नहीं, एकाएक नहीं, ब्लीडिंग तो पहले भी हुई थी पर तब कंट्रोल कर ली गई थी। पन्द्रह दिनों बाद फिर होने लगी। एक्सेसिव ब्लीडिंग। ···चार घंटे आपरेशन में लगे···एण्ड यू नो, वी डाक्टर्स आर वर्स्ट पेशेंट्स! वो संध्या के बारे में भी कह रहे थे। संध्या भी डाक्टर थी।

—यस! आप तो सब समझ रहे होंगे···संध्या को भी एक-एक बात का अंदाज हो रहा होगा! मैंने कहा।

—लेकिन वो बहुत करेजसली विहेव कर रही है! संध्या के डाक्टर पति ने कहा। बोल तो सकती नहीं···पल्स भी गर्दन के पास मिली···आर्टीफिशल रेस्पिरेशन पर है···एक तरह से देखिए तो उसका सारा शरीर आराम कर रहा है और सब कुछ आर्टीफिशल मदद से ही चल रहा है··· संध्या के डाक्टर पति ज्यादातर बातें मुझे मेडिकल टर्म्स में ही बताते रहे और मैं उन्हें समझने की कोशिश करता रहा बीच-बीच में मैं इधर-उधर की बातें भी करता रहा।

—संध्या का भाई भी आज सुबह पहुंच गया···किसी तरह उसे जापान होते हुए टिकट मिल गया! उन्होंने बताया।

—यह बहुत अच्छा हुआ। मैंने कहा।

— आप देखना चाहेंगे ?

—हां, अगर पासिबिल हो तो···

—आइए · देख तो सकते हैं···भीतर जाने की इजाजत नहीं है··· वैसे तो सब डाक्टर फ्रेंड्स ही हैं, पर···

— नहीं-नहीं, वो ठीक भी है···।

—वो बोल भी नहीं सकती···वैसे आज कांशस है···कुछ कहना होता है तो लिख के बता देती है। उन्होंने कहा और एक केबिन के सामने पहुंच कर उन्होंने इशारा किया।

मैंने शीशे की दीवार से संध्या को देखा। वह पहचान में ही नहीं आई। दो डाक्टर और नर्स उसे अटैण्ड भी कर रहे थे···और फिर इतनी नलियां और मशीनें थीं कि उनके बीच संध्या को पहचानना मुश्किल भी था।

संध्या होश में थी। डाक्टर को देख रही थी। डाक्टर उसका एक हाथ सहलाते हुए उसे कुछ बता रहा था। मैंने संध्या को इस हाल में देखा तो मन उदास हो गया। वह कितनी लाचार थी। बीमारी और समय के सामने आदमी लाचार ही होता है···कुछ कर नहीं पाता। मैंने मन-ही-मन संध्या के लिए प्रार्थना की—किससे की यह नहीं मालूम—ऐसी जगहों पर आकर भगवान पर ध्यान जाता भी है और किसी के शुभ के लिए उसके अस्तित्व को स्वीकार कर लेने में अपना कुछ नहीं जाता—सिवा प्रार्थना के कुछ शब्दों के।

हम आई० सी० यू० से हट कर फिर बरामदे में आ गए। वहां बैठने के लिए कोई जगह नहीं थी। बरामदे बैठने के लिए बनाए भी नहीं गए थे। संध्या या डाक्टर की बहन नीचे चादर बिछाये बैठी थी। डाक्टर के कुछ दोस्त एक गुच्छे में खड़े थे।

—अभी तो, बाद में, एक आपरेशन और होगा···संध्या के डाक्टर पति ने बताया—तब छोटी आंत को सिस्टम से जोड़ा जाएगा···खैर पहले वो स्टेबलाइज करे, फिर रिकवरी का सवाल है···इसमें ही करीब तीन महीने लग जायेंगे···उसके बाद मैं सोचता हूं—उसे अमरीका ले जाऊंगा!

—यह ठीक रहेगा !

इसके बाद हम फिर इधर-उधर की बातें करते रहे। मैं संध्या की संगीन हालत से उनका ध्यान भी हटाना चाहता था। इसके सिवा मैं और कर भी क्या सकता था। और डाक्टर के सामने यों खामोश खड़े रहना अच्छा भी नहीं लग रहा था।

मैं यह जताते हुए कि अस्पताल वालों से छुपा कर मैं सिगरेट पीना चाहता हूं—मैं खिड़की के पास जाकर खड़ा हो गया। बाहर लू चल रही थी। नीचे धरातल पर कुछ लोग आ-जा रहे थे···वे ऊपर से बहुत लाचार और बेचारे लग रहे थे और मेरे मन से सबके शुभ के लिए सद्भावना की नदियां फूट रही थीं···ऐसे में तुम सोचो—लगता है मनुष्य ने मनुष्य के साथ तो सघन और उदात्त संबंध बना लिए हैं पर ईश्वर के साथ वह ऐसा नहीं कर पाया है। मनुष्य अपने ईश्वर के दुःख-सुख में शामिल नहीं हो सकता। ईश्वर से उसका संबंध सिर्फ दाता और पाता का है। वह देता है और मनुष्य पाता है। कितना इकतरफा रिश्ता है यह···और फिर अगर तुम यह भी मान लो कि ईश्वर ही मनुष्य को बनाता है तो ईश्वर की क्षमता पर विश्वास और घटने लगता है—सृष्टि के आदि से वह मनुष्य को बनाता आ रहा है परन्तु असंख्य प्राण बनाने के बावजूद वह आज तक एक सहज सम्पूर्ण और मुकम्मिल मनुष्य नहीं बना पाया। कुछ कमी कहीं तो ईश्वर की व्यवस्था में भी है···हो सकता है उनका आदि-कलाकार कुंभकार उन्हें मिट्टी सप्लाई करने में कुछ घपला कर रहा हो।··· इस रहस्य का पता कौन लगायेगा ? रहस्य ही रहस्य को जन्म देता है। शायद इसीलिए मनुष्य ने ईश्वर को रहस्य ही रहने दिया···जो सत्ता या शक्ति विश्वास के निकष पर खरी न उतरे उसे रहस्य बना देना ही बेहतर है··· और किया भी क्या जा सकता···

लू के एक थपेड़े ने मेरा मुंह झुलसा दिया। डॉक्टर अपने चिन्ताग्रस्त शुभ-चिन्तकों के गुच्छे में खड़े थे—और सबके चेहरे कुछ ज्यादा सतर्क थे।

—ब्लडप्रेशर गिर रहा है···

आई० सी० यू० में डॉक्टरों और नर्सों की आमदरफ्त से लग रहा था कि कोई कठिन परिस्थिति सामने है। कुछ देर बाद पता चला कि

नीडिल कुछ ढीली हो गई थी···उसे ठीक कर दिया गया है और ब्लड-प्रेशर ठीक से रिकार्ड हो रहा है···सबने राहत की सांस ली। मौत से लड़ना कोई मामूली काम नहीं है। ईश्वर ने तो मौत पैदा की ही है, पर मौत तो मनुष्य भी पैदा करता है···एक तरफ जीवन के लिए लड़ता है और दूसरी तरफ मौत भी बांटता है—यह द्वंद्व ही तो जीवन है···यह द्वंद्व और द्वैत ही जीवित रहने की शर्त है और अद्वैत या समानता तक पहुंचने का साधन और आदर्श भी। आध्यात्मिक अद्वैत जब भौतिकता की सतह पर आता है और मनुष्य के प्रश्न सुलझाता है तभी तो वह समवेत समानता का दर्शन कहलाता है···

सिगरेट से मुंह कड़वा हो गया था। लू वैसे ही थपेड़े मार रही थी। सीमेंट के पलस्तर का दहकता-चिलचिलाता तालाब सामने फैला था—कोई एक आदमी जलते नंगे पैरों से उसे पार कर रहा था।

मैंने पलटते हुए लिफ्ट की तरफ देखा। डॉक्टर मेरा आशय समझ गए थे, लेकिन तभी राजनीतिज्ञ-से उनके कोई दोस्त आ गए थे। शुरू की पूछताछ के बाद वे लगभग भाषण-सा देने लगे—

—अब तो अग्नि मिसाइल के बाद भारत दुनिया का सबसे शक्तिशाली तीसरी देश हो गया है और आने वाले दस वर्षों में हमें अब कोई भी शक्ति महाशक्ति बनने से नहीं रोक सकती। इंग्लैंड और फ्रांस की पूरी जनसख्या से ज्यादा बड़ा है आज भारत का मध्यवर्ग···अपनी सम्पन्नता में···भारयीय मध्यवर्ग जैसी शक्ति और सम्पन्नता उन देशों के मध्यवर्ग के पास भी नहीं है···

तभी एक चिन्ताग्रस्त नर्स तेजी से गुजर गई और सन्नाटा छा गया। चिन्ता के भारी क्षण जब कुछ हलके हुए तो मैंने फिर लिफ्ट की तरफ देखा···डाक्टर साहब समझ गए—

—आपको ढाई-तीन घण्टे हो गए···क्या-क्या काम छोड़ के आए होंगे···और वे लिफ्ट की ओर बढ़े। लिफ्ट आया, पर वह ऊपर जा रहा था। डाक्टर साहब को मेरी खातिर रुकना न पड़े, इसलिए मैं लिफ्ट में घुस गया।

लिफ्ट आठ पर पहुंचा। वहां ज्यादा लोग नहीं थे। पर एक स्ट्रेचर

था और दो-तीन लोग। स्ट्रैचर भीतर आया। उसी के साथ लोग भी। स्ट्रैचर पर चादर में लिपटा वही बच्चा पड़ा हुआ था। वह बेहोश था। वह आपरेशन के बाद लौट रहा था। उसके गालों और गर्दन के रेशमी रोए पसीने से भीगे हुए थे ‥माथे पर बाल भी पसीने के कारण चिपके हुए थे।

उसका बाप एक हाथ में ग्लूकोज की बोतल पकड़े हुए था…ग्लूकोज़ की नली की सुई उसकी थकी और दूधभरी बांह की धमनी मे लगी हुई थी …उसका बाप लगातार उसे देख रहा था…वह शायद पसीने से माथे पर चिपके उसके बालों को हटाना चाहता था, इसलिए उसने दूसरा हाथ ऊपर किया, पर उस हाथ मे बच्चे की चप्पलें उसकी उंगलियों में उलझी हुई थीं ‥ वह छोटी-छोटी नीली हवाई चप्पलें…

मैंने बच्चे को देखा…फिर उसके निरीह बाप को।

मेरे मुंह से अनायास निकल ही गया—

—इसका…

—इसकी टांग काटी गई है। वार्ड बॉय ने बाप की मुश्किल हल कर दी।

—ओह ! …कुछ हो गया था ? मैंने जैसे उसके बाप से ही पूछा। वह मुझे देखकर चुप रह गया…उसके ओंठ कुछ बुदबुदा कर थम गए… लेकिन वह भी चुप नही रह सका। एक पल बाद ही बोला—

—जाघ की हड्डी टूट गई थी…

—चोट लगी थी ?

—नहीं…सड़क पार कर रहा था…एक गाड़ी ने मार दिया। वह बोला। और उसने मेरी तरफ ऐसे देखा जैसे टक्कर मारने वाली गाड़ी मेरी ही थी।

फिर वह वीतराग होकर अपने बेटे को देखने लगा।

पाचवीं मंजिल पर लिफ्ट रुकी। बच्चों का वार्ड इसी मंजिल पर था। लिफ्ट में आने वाले कई लोग थे। वे सब स्ट्रैचर निकाले जाने के इंतज़ार में बेसब्री से रुके हुए थे।…वार्ड बॉय ने झटका देकर स्ट्रैचर निकाला तो बच्चा बोरे की तरह हिल उठा, अनायास ही मेरे मुंह से निकल गया—

—धीरे से…

—ये तो बेहोश है···इसे क्या पता ?···स्ट्रेचर को बाहर धुमा करते हुए वार्ड बॉय ने कहा।

उस बच्चे का बाप खुले दरवाज़े से टकराता हुआ बाहर निकला तो एक नर्स ने उसके हाथ की ग्लूकोज़ की बोतल पकड़ ली।

लिफ्ट के बाहर पहुंचते ही उसके बाप ने उसकी दोनों नीली हवाई चप्पलें वहीं कोने में फेंक दी···फिर कुछ सोचकर कि शायद उसका बेटा होश में आते ही चप्पलें मांगेगा, उसने पहले एक चप्पल उठाई···फिर दूसरी भी उठा ली और स्ट्रेचर के पीछे-पीछे वार्ड की तरफ जाने लगा।

मुझे नहीं मालूम कि उसका बेटा जब होश में आएगा तो क्या मांगेगा —चप्पल मांगेगा या चप्पलों को देखकर अपना पैर मांगेगा···

बेसब्री से इंतज़ार करते लोग लिफ्ट में आ गए थे। लिफ्टमैन ने बटन दबाया। दरवाज़ा बन्द हुआ। और वह लोहे का बन्द कमरा नीचे उतरने लगा।



कलकत्ता का : विमल मित्र 45.00; इन दिनों : विमल मित्र 35.00; मुजरिम हाज़िर : भाग-1 विमल मित्र 75.00; मुजरिम हाज़िर : भाग-2 विमल मित्र 75.00; धतुरग : विमल मित्र 60.00; नंगा रुख : ओ०पी० शर्मा 20.00; बंधन : नवकांत बरुआ 25 00; धीरे समीरे : गोविन्द मिश्र 60.00; चक्रव्यूह : श्रवणकुमार गोस्वामी 70.00; आगन्तुक : डॉ० जयंत नार्लीकर 30 00; चौराहा : विमल मित्र 80.00; जिनका कोई नहीं : विमल मित्र 50.00; कोणार्क : प्रतिभा राय 65.00; अनदेखी : डॉ० प्रभाकर माचवे 50.00; सागर पार का संसार : शशिप्रभा शास्त्री 50.00; एकता के देवदूत : शंकराचार्य : डॉ० दशरथ ओझा 75 00; अब किसकी बारी है : विमल मित्र 45.00; रेखाकृति : डॉ० कुसुम अंसल 35.00।

कहानी

छोड़ा हुआ रास्ता (सम्पूर्ण कहानियां : भाग-1) : अज्ञेय 60.00; लौटती पगडंडियां (सम्पूर्ण कहानियां : भाग-2) अज्ञेय 60.00; ये तेरे प्रतिरूप : अज्ञेय 12 00; मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियां : मोहन राकेश 90.00; सुदर्शन की श्रेष्ठ कहानियां : सुदर्शन 20.00; पहली कहानी : सं० कमलेश्वर 50.00; जार्ज पंचम की नाक : कमलेश्वर 15 00; कश्मीर की श्रेष्ठ कहानियां : शिब्बन कृष्ण रैना 25.00; मां (गुजराती की श्रेष्ठ कहानियां) अनु० गोपालदास नागर 18.00; धूमकेतु : जयन्त विष्णु नार्लीकर 30.00; बारह कहानियां : सत्यजित राय 30.00; नायक-खलनायक : अचला नागर 30.00; नवाबी मसनद : अमृतलाल नागर 25.00; अलग-अलग : गायत्री कमलेश्वर 25.00; त्रासदियां : नरेन्द्र कोहली 20 00; 'मेरी प्रिय कहानियां' शृंखला के अन्तर्गत : अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा, आचार्य चतुरसेन, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर, यशपाल, कृश्न चन्दर, इलाचन्द्र जोशी, 'अश्क', निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, 'रेणु', मन्नू भंडारी, राजेन्द्र अवस्थी, गोविन्द मिश्र, भीष्म साहनी, यादवेन्द्र शर्मा, 'चन्द्र', मोहन राकेश की कहानियां : प्रत्येक का मूल्य 25.00; इतने अच्छे दिन : कमलेश्वर 30.00; हिमाचल की कहानी : हरिराम जस्टा 25.00; अज्ञेय की सम्पूर्ण कहानियां : अज्ञेय 150.00।

कविता

आत्मिका : महादेवी 30.00; नीलाम्बरा : महादेवी 30 00; दीपगीत : महादेवी 30.00; मेरी श्रेष्ठ कविताएं : बच्चन 80.00; नई से नई पुरानी से पुरानी : बच्चन 30.00; मधुशाला : बच्चन 20.00; मधुबाला :

बच्चन 25.00; सतरंगिनी : बच्चन 20.00; सोऽहं हंस : बच्चन 10.00; त्रिभंगिमा : बच्चन 40.00; दो चट्टानें : बच्चन 25.00; जाल समेटा : बच्चन 10.00; बंगाल का काल : बच्चन 10.00; चुनी हुई कविताएं : अज्ञेय 50.00; नदी की बांक पर छाया : अज्ञेय 20.00; चट्टान के फूल : रामनिवास जाजू 30.00; मालकौंस : अनन्त कुमार पाषाण 30.00; एक परत धूल की : हरिशंकर पाठक 35.00;

आत्मकथा

डॉ० हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा—चार खंडों में
क्या भूलूं क्या याद करूं (प्रथम भाग) 60.00; नीड़ का निर्माण फिर (दूसरा भाग) 60.00; बसेरे से दूर (तीसरा भाग) 50.00; दशद्वार से सोपान तक (चौथा भाग) 70.00; जीवन-यात्रा (पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह की आत्मकथा); डॉ० चन्द्रशेखर 125.00; स्वतन्त्रता आंदोलन और उसके बाद : पं० कमलापति त्रिपाठी 75.00; खानाबदोश : अजीत कौर 50.00; (साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत)

नाटक/एकांकी

आषाढ़ का एक दिन : मोहन राकेश रामकुमार 25.00; कर्मवीर : डॉ० रामकुमार वर्मा 15.00; अग्निशिखा : डॉ० वर्मा 15.00; अंबपाली : रामवृक्ष बेनीपुरी 16.00; न्याय की रात : चन्द्रगुप्त विद्यालंकार 8.00; अशोक : चन्द्रगुप्त विद्यालंकार 20.00; सिकन्दर : सुदर्शन 25.00 युगे-युगे क्रांति : विष्णु प्रभाकर 12.00;

कोश

शिक्षार्थी हिन्दी अंग्रेजी शब्दकोश : डॉ० हरदेव बाहरी 80.00; अभिनव हिन्दी शब्दकोश : डॉ० बाहरी ; राजपाल अंग्रेजी-हिंदी शासकीय प्रयोग कोश : गोपीनाथ श्रीवास्तव 75.00; सामयिक हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोश : डॉ० बाहरी : साहित्यिक सुभाषित कोश : हरिवंशराय शर्मा 150.00; साहित्यिक लोकोक्ति कोश : हरिवंशराय शर्मा 60.00; सचित्र विज्ञान कोश : डॉ० बालकृष्ण 70.00; सचित्र विश्वकोश (तीन भाग) प्रत्येक का मूल्य 60.00;

धर्म/अध्यात्म/दर्शन

भारतीय दर्शन (प्रथम खंड) : डॉ० राधाकृष्णन् 125.00; भारतीय दर्शन (दूसरा खंड) : डॉ० राधाकृष्णन् 150.00; पूर्व और पश्चिम—कुछ विचार : डॉ० राधाकृष्णन् 30.00; उपनिषदों की भूमिका : डॉ० राधा-

कृष्णन् 30.00; गौतम बुद्ध : जीवन दर्शन : डॉ० राधा कृष्णन् 6.00; हिन्दू धर्म : नई चुनौतियां : डॉ० कर्णसिंह 30.00; ज्योतिपथ : बशीर अहमद मयूख 35.00;

संपूर्ण ग्रंथावली

रांगेय राघव ग्रंथावली (दस खण्डों में) 750.00;
अमृतलाल नागर रचनावली (दस खंडों में) शीघ्र प्रकाश्य

जीवनी

मेरा बचपन : रवीन्द्रनाथ टैगोर 6.00; क्रांतिकारी ऋषि कार्ल मार्क्स : लाल हरदयाल 5.00; बा और बापू : आचार्य चतुरसेन 5.00; कृष्ण चरित्र : बंकिमचन्द्र 25.00; रामचरितमानस (टीका सहित) : डॉ० राजबहादुर पाण्डेय (टीकाकार) 100.00; सरदार पटेल : सत्यकाम विद्यालंकार 5.00; महापुरुषों की झांकियां : आचार्य चतुरसेन 10.00; ईश्वरचन्द्र विद्यासागर : रवीन्द्रनाथ टैगोर 4.00; छह युग पुरुष : अमृतलाल नागर 10.00; सभ्यता के निर्माता : अमृतलाल नागर 10.00; बाबा साहेब अम्बेडकर : प्रो० राधाकृष्णन् शर्मा 5.00; महापुरुषों के संस्मरण: विश्वनाथ 6.00; महाराणा प्रताप : विश्वनाथ 4.00; इंदिरा गांधी : विजय विद्यालंकार 10.00; युग निर्माता : जवाहरलाल नेहरू : आशाराम माहेश्वरी 10.00;

'आज के लोकप्रिय हिंदी कवि' पुस्तकमाला

(कवियों के व्यक्तित्व एवम् कृतित्व पर)
सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, बच्चन, अज्ञेय, दिनकर, नागार्जुन, भगवतीचरण वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, भवानीप्रसाद मिश्र, शिवमंगल सिंह 'सुमन', रामावतार त्यागी, श्रीकांत वर्मा : प्रत्येक का मूल्य 25 रुपये।

शायर और शायरी

ग़ालिब, इक़बाल, फ़िराक़ गोरखपुरी, जिगर मुरादाबादी, फ़ैज़, मीर तकी मीर, मजरूह सुल्तानपुरी, शकील बदायूंनी, सरदार जाफ़री, (सभी प्रकाश पंडित द्वारा संपादित) प्रत्येक का मूल्य 20 रुपये; सरगम (चुनी हुई ग़ज़लें) : फ़िराक़ गोरखपुरी 35.00; रूप (चुनी हुई रुबाइयां) : फ़िराक़ गोरखपुरी 30.00

: जितेन्द्र प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032 98102